TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

ब्रह्मणे नमः

भारतराज्य-शिक्षामन्त्रालयार्थिकसहयोगेन प्रकाशितम्

महर्षि-पिङ्गलाचार्य-प्रणीतम्

छन्दःशास्त्रम्

मुनिश्रीमेधाव्रताचार्य-कविरत्न-विरचितया
'व्रतिमङ्गला'वृत्त्या समेतम्

प्रणयनस्थानं झज्जर-गुरुकुलम्

२००० | २०२४ वैक्रमाब्दे / १८८९ शकाब्दे | Rs 20/- यवद्वयम्

ब्रह्मणे नमः

[भा]रतराज्य-शिक्षामन्त्रालयार्थिकसहयोगेन प्रकाशितम्

महर्षि-पिङ्गलाचार्य-प्रणीतम्

छन्दःशास्त्रम्

[म]ुनिश्रीमेधाव्रताचार्य-कविरत्न-विरचितया
'व्रतिमङ्गला' वृत्त्या समेतम्

प्रणायनस्थानं : झज्जर-गुरुकुलम्

[प्रथ]मावृत्तिः २००० } २०२४ वैक्रमाब्दे १८८९ शा[के] { मूल्यम् २

प्रकाशकः—

भगवान्देव आचार्यः

हरयाणा-साहित्य-संस्थानाध्यक्षः

गुरुकुल झज्जर, रोहतक (हरयाणा)

"With the financial assistance of the
Govt. of India Ministry of Education"



मुद्रकः—

वेदव्रतः शास्त्री विद्याभास्क

आचार्य प्रिंटिंग प्रेस, दयानन्दम

गोहाना रोड, रोहतक

विभिन्न पात्रों के कायिक और वाचित अभिनय के माध्यम से सूक्तियों का प्रयोग करके सामाजिक को तत्क्षण प्रभावित करता है, सूक्ति द्वारा प्रदत्त इस उपदेश की अमिट छाप सामाजिक के हृदय पर अंकित हो जाती है ।

संस्कृत नाटकों की रचना का आरम्भ अति प्राचीन है । तथापि इसको भास से प्रारम्भ माना जाता है। यदि उससे पहले नाटकों की रचना हुई भी होगी, तो वे वर्तमान समय में उपलब्ध नहीं हैं। नाहीं उनके अन्य संकेत भी किसी स्रोत से उपलब्ध होते हैं । भास, शूद्रक, कालिदास, विशाखदत्त, बिज्जिका, भवभूति, हर्ष, मुरारि, अनङ्गहर्ष कुलशेखरवर्मन्, राजशेखर, दिङ्नाग आदि कवियों की नाटक कृतियों में मानव-जीवन के विकास, उन्नति और सुख के मार्ग का निदर्शन करने वाले उपदेश सूक्तियों के रूप में भरे पड़े हैं । अपने पैनेपन के कारण ये सूक्तियां कठोर से कठोर हृदय में भी सरलता से प्रवेश कर जाती हैं । इनके द्वारा उपदिष्ट असह्य बात भी सरलता एवं सरसता से अभिव्यक्त हो जाती है ।

प्रस्तुत 'संस्कृत-नाटक-सूक्ति-तरङ्गिणी' में संस्कृत नाटकों में संग्रथित सूक्तियों का संग्रह करने का प्रयास किया गया है । इस संग्रह में भास से लेकर दिग्नाग तक (चतुर्थ शताब्दी ई० पू० से लेकर दशम शताब्दी ई० तक) के नाटकों की सूक्तियां ली गई हैं । उत्तरवर्ती नाटकों की न तो संख्या ही अधिक है और नाहीं उनमें वह गुणोत्कृष्टता है, अतः उनको नहीं लिया गया ।

सूक्तियों के संग्रह अनेक प्रकार से हो सकते हैं और अब तक अनेक संग्रह किये गये हैं । परन्तु अनेक प्राचीन सूक्ति-संग्रहों के होते हुये भी इस संग्रह की आवश्यकता इसलिये महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें मानव-जीवन की आवश्यकताओं का जो समाधान किया गया है, वह वर्तमान युग में भी उतना ही उपादेय है, जितना कि इन नाटकों के रचना-काल में था ।

नाटकों में गद्य-पद्य मिश्रित रचना होने से सूक्तियां भी गद्य और पद्य दोनों में होती हैं । प्रस्तुत सूक्ति-तरङ्गिणी में ११८२ सूक्तियों का संग्रह है,

जो गद्य-पद्य दोनों में है। इन सूक्तियों का विषय-वस्तु के आधार पर वर्गीकरण किया गया है। ये २४२ वर्गों में विभक्त हैं। कुछ वर्गों में सूक्तियों की संख्या अधिक होने के कारण अनेक उपवर्ग भी बनाये गये हैं।

सूक्तियों का क्रम वर्ण-अनुक्रम से है। सबसे पहले विभिन्न २४२ विषयों के वर्गों को वर्ण-अनुक्रम से रखा गया है। यदि किसी विषय पर किसी सूक्ति को देखना है तो उस विषय को वर्ण-अनुक्रम के आधार पर खोज कर देखा जा सकता है। तदनन्तर उपवर्गों को तथा वर्ग-उपवर्ग में सन्निहित सूक्तियों को वर्ण अनुक्रम के क्रम से रखा गया है। यह 'सूक्ति-तरङ्गिणी' समालोचना के विशेषज्ञों, विद्वान् पुरुषों और सामान्य जनों सभी के लिये उपयोगी हो सके, इस दृष्टि से संस्कृत-सूक्ति को लिखकर उसका सन्दर्भ देकर हिन्दी अनुवाद भी किया गया है।

संग्रह के अन्त में दो परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में स्रोतोभूत संस्कृत नाटकों की सूची उनके लेखकों एवं प्रकाशकों के विवरण सहित दी गई है। दूसरे परिशिष्ट में ऐतिहासिक समय-अनुक्रम से नाटककारों के नाम और उनकी कृतियों का उल्लेख करके कृति के साथ उनमें निहित सूक्तियों को देवनागरी वर्ण-अनुक्रम के अनुसार संकेतित किया गया है।

प्रस्तुत 'संस्कृत नाटक-सूक्ति-तरङ्गिणी' का संग्रह मानव-जीवन की आवश्यकताओं और समस्याओं को दृष्टि में रखकर हुआ है। जबकि हमें भारत-देश का नवनिर्माण करके भारतीय समाज का अभ्युत्थान तथा चरित्र निर्माण करने की बहुत अधिक आवश्यकता है, यह सूक्ति-तरङ्गिणी पाठकों का पथप्रदर्शन करके उनमें उदात्त तथा गौरवान्वित भावनाओं का संभरण करने में समर्थ होगी। उनको लोकव्यवहार में सफलता प्रदान करके उन्नति की ओर ले जा सकेगी, जिस उद्देश्य से यह प्रयास हुआ है।

विदुषां वशंवदः

कृष्ण कुमारः

संस्कृत-नाटक-सूक्ति-तरंगिणी

(१) अतिका परित्याग—

१. सर्वमतिमात्रं दोषाय । उत्तररामचरित पृ० ३६६ ॥
अति करने से सभी स्थानों पर दोष होता है ।

(२) अतिथि—

२ उचितः खलु ते अतिथिसत्कारः । नागानन्द पृ० ४६ ॥
अतिथियों का सत्कार करना उचित ही है ।

३. तपोवनानि नाम अतिथिजनस्य स्वकं गृहम् ।
स्वप्नवासवदत्त पृ० १६ ॥
तपोवन अतिथियों के अपने ही घर होते हैं । तपोवनवासी अतिथियों का सदा सत्कार करते हैं ।

४ पूजार्होऽप्यतिथिर्भवेत् स्वविभवैः ॥ पंचरात्र २ ३६ ॥
अतिथि अपने सामर्थ्य के अनुसार पूजनीय होता है ।

५ सर्वस्याभ्यागतो गुरुः । नागानन्द पृ० ५० ॥
अतिथि सबके लिये गुरु होता है ।

(३) अनुराग—

६. अनुरागः अनुरागेण परीक्षितव्यः । मालविकाग्निमित्र पृ० ६८ ॥
अनुराग की परीक्षा अनुराग से करनी चाहिये ।

७ गुणाः खल्वनुरागस्य कारणं न पुनर्बलात्कारः ।

मृच्छकटिक पृ० ३४ ॥

अनुराग गुणों के कारण होता है, बलात्कार से नहीं ।

८ सर्वं हि सैन्यमनुरागमृते कलत्रम् । प्रतिज्ञायौगन्धरायण १.४ ॥

स्वामी के प्रति अनुराग के विना सेना स्त्री के तुल्य है । अनुराग से रहित सेना ही राजा की सहायक होती है ।

विवाह में अनुराग को उपादेयता—

९. इतरेतरानुरागो हि विवाहकर्मणि पराध्यंमङ्गलम् ।

मालतीमाधव पृ० १०२ ॥

विवाह के कार्य में परस्पर अनुराग ही अतिमूल्यवान् मंगलकारी है । विना प्रेम के विवाह व्यर्थ है ।

(४) अन्धानुकरण—

१० अयं तु तपस्वीलोकः पिपीलिकाधर्मोऽन्योन्यचरितानुगामी ।

धूर्तविटसंवाद पृ० ११५ ॥

ये तपस्वी लोग तो चीटियों के समान हैं, जो एक दूसरे का अन्धा अनुकरण करते हैं । मूर्ख लोग विना विचारे दूसरों का अनुकरण करते हैं ।

(५) अन्योक्तियां—

११. अक्ष्णोः प्रभातमासीत् । अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० १८५ ॥

आंखों में ही सवेरा हो गया । रात भर नीद नहीं आई ।

१२. अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति । मृच्छकटिक पृ० ६२ ॥

न पीने योग्य जलाशयों में जल बहुत होता है । कंजूस नीच मनुष्यों के पास धन बहुत हो जाता है ।

१३. अभ्यन्तरस्थित एव मूढगर्भः अधिकतरं बाधते ।

कुन्दमाला पृ० ६२ ॥

विकृत गर्भ अन्दर स्थित होकर अधिक पीड़ा देता है। मन में कष्टकर बातों को रखे रहने से बहुत अधिक पीड़ा होती है।

१४. आशंकसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम् ॥

अभिज्ञानशाकुन्तल १.२६ ॥

जिसको तुम अग्नि समझते हो, वह तो स्पर्श करने योग्य रत्न है। भ्रांति वश अच्छी वस्तु को भी मनुष्य बुरी समझ कर छोड़ देता है।

१५. क इदानीं सहकारमन्तरेण अतिमुक्तलतां पल्लवितां सहते।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २३६ ॥

आम के वृक्ष को छोड़कर पल्लवित मोतिये की बेल के भार को कौन वहन कर सकता है। गुणवती यौवनवती युवती को योग्य समर्थ पुरुष ही संभाल सकता है।

१६. कश्चन्द्रोदयं प्रकाशयति ? पादताडितक पृ० २२० ॥

चन्द्रमा के उदय को कौन प्रकाशित करता है ? सौन्दर्य और गुण स्वय प्रकाशित हो जाते हैं।

१७. किं हीनकुसुमं सहकारपादपं मधुकर्यः सेवन्ते ?

मृच्छकटिक पृ० ७ ॥

पुष्पों से रहित आम के वृक्ष के पास भ्रमरियां कहा जाती है ? निर्धन मनुष्य की सेवा कोई नहीं करता।

१८. किमत्र चित्रं यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तेते ?

अभिज्ञानशाकन्तल पृ० २३६ ॥

इसमें आश्चर्य ही क्या है कि विशाखा नक्षत्र चन्द्रमा की कला का अनुसरण करते हैं। गुणवती सुन्दर युवती अपने योग्य वर का ही वरण करती है।

१६. कियच्चिरं चन्द्रे प्रसारितकरे अविस्पष्टोत्पला नीलोत्पलिनी तिष्ठति ? **विद्धसालभञ्जिका पृ० १२ ॥**

चन्द्रमा द्वारा किरणों को प्रसारित करने पर नील कमलिनी की पखुड़िया कितनी देर तक विकसित नहीं होंगी ? गुणी प्रेमी को देख कर प्रणयिनी तुरन्त प्रफुल्लित हो जाती है।

२०. कियत्कालं जलदतिरस्करिणी मार्तण्डमण्डलमन्तरयति ?

बालरामायण पृ० ६१८ ॥

मेघरूपी पर्दा कितने समय तक सूर्य मण्डल को छिपाये रख सकता है ? तेजस्वी का तेज अधिक समय तक छिपा नही रह सकता ।

२१. कियच्चिरं वा मेघान्तरेण पूर्णचन्द्रदर्शनम् ?

उत्तररामचरित पृ० २६८ ॥

मेघों के बीच में से कितनी देर तक पूर्ण चन्द्र का दर्शन होगा ? प्रिय का दर्शन स्वल्प समय के लिये ही है ।

२२. कोऽन्यो हुतवहाद् दग्धुं प्रभवति ?

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २७२ ॥

अग्नि के अलावा जलाने की सामर्थ्य किसमें है ? क्रोधी व्यक्ति ही दूसरो को अभिशाप देता है ।

२३. क्व पुनः सुधादीधितिरपि आतपस्यन्दी ?

बालरामायण पृ० ३४६ ॥

क्या फिर चन्द्रमा भी धूप को प्रवाहित करता है ? विरही व्यक्ति को चन्द्रमा भी सन्ताप देता है ।

२४. खलु अक्षिदुःखितोऽभिमुखं दीपशिखां सहते ?

विक्रमोर्वशीय पृ० १६० ॥

दुःखती आंखों से पीड़ित व्यक्ति क्या अपने समक्ष विद्यमान दीपक की ज्वाला को सहन कर सकता है ? दुःखी व्यक्ति स्वल्प से भी अन्य कष्ट को नही सह सकता ।

२५. ग्लपयति यथा शशाङ्कं न तथा कुमुद्वतीं दिवसः ?

अभिज्ञानशाकुन्तल ३.१४ ॥

दिवस जितना चन्द्रमा को ग्लपित करता है, उतना कुमुदिनी को नहीं । प्रणयिनी की अपेक्षा प्रणयी को विरह की पीड़ा अधिक सताती है ।

२६. चन्दनं खलु मया पादुकापरिभोगेन दूषितम् ।

मालविकाग्निमित्र पृ० १३३ ॥

पादुका के रूप में उपयोग करके मैने चन्दन को दूषित कर दिया है। श्रेष्ठ वस्तु का व्यवहार निम्न कार्य में करना उचित नही है।

२७. जलं कूलावपातेन प्रसन्नं कलुषायते । मृच्छकटिक ९.२४ ॥

तट के गिरने से स्वच्छ जल मलिन हो जाता है। निर्मल चरित्र व्यक्ति को लोक-निन्दा द्वारा दूषित किया जा रहा है।

२८. तमस्तपति धर्मांशौ कथमाविर्भविष्यति ?

अभिज्ञानशाकुन्तल ४.१४ ॥

सूर्य के प्रकाशित होने पर अन्धकार कैसे प्रकट हो सकता है ? कर्तव्य परायण राजा का शासन होने पर राज्य में उपद्रव नहीं होते।

२९. न खलु चन्द्रादातपो निष्पतति । धूर्तविटसंवाद पृ० ११९ ॥

चन्द्रमा से धूप नहीं निकलती। सज्जन मनुष्य किसी को कष्ट नही पहुंचाते।

३०. न खलु प्रकाशमन्तरेण तुहिनभानुरुज्जिहीते ।

अनर्घराघव पृ० ५४ ॥

चन्द्रमा प्रकाश को छोड़ कर अन्य वस्तु प्रकट नहीं करता। सज्जन सबको सुख ही देते हैं।

३१. न चन्द्रादातपो भवति । मृच्छकटिक पृ० १५८ ॥

चन्द्रमा से धूप नहीं निकलती। सज्जन किसी को कष्ट नहीं देते।

३२. न पुष्पमोषमर्हति लता । चारुदत्त पृ० २६ ॥

३३. न पुष्पमोषमर्हत्युद्यानलता । मृच्छकटिक पृ० ३२ ॥

उद्यान की लता के पुष्प तोड़ना उचित नहीं। सुन्दर रमणी के आभूषण छीनना उचित नहीं है।

३४. न हि कमलिनीं दृष्ट्वा ग्राहमवेक्षते मतङ्गज ।

मालविकाग्निमित्र पृ० ५६ ॥

कमलिनी को देखकर हाथी मगरमच्छ की परवाह नही करता । प्रणयिनी को सामने पाकर प्रेमी विपत्ति की परवाह नहीं करता ।

३५. न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात् ।

अभिज्ञानशाकुन्तल १ २४ ॥

कान्ति से भरा हुआ प्रकाश पृथिवीतल से उदित नहीं होता । उत्तम वस्तु उत्तम स्थान से उत्पन्न होती है ।

३६. न सूर्यो दीपेनान्धकारं प्रविशति । पद्मप्राभृतक पृ० २३ ॥

सूर्य दीपक की सहायता से अन्धकार में प्रविष्ट नहीं होता । तेजस्वी पुरुष किसी अन्य की सहायता के विना ही अपना मार्ग खोज लेते है ।

३७. पत्तने विद्यमानेऽपि ग्रामे रत्नपरीक्षा ?

मालविकाग्निमित्र पृ० २१ ॥

नगर में होने पर भी ग्राम में रत्नों की परीक्षा ? गुणी मनुष्य के होने पर उसी के परामर्श से कार्य करना उचित है ।

३८. प्रभातप्राया रजनी । बालरामायण पृ० १६८ ॥

रात्रि समाप्त होकर सवेरा हो गया है । विपत्तियो का समय समाप्त होकर सुख का समय आ गया है ।

३९. मदनीयं खलु पुराणमधु । पद्मप्राभृतक पृ० २७ ॥

पुरानी मदिरा अधिक मादक होती है। पुराना परिचय अधिक स्नेहयुक्त होता है ।

४०. मधुरमपि कटु खादितमजीर्णं भवति । चारुदत्त पृ० ७५ ॥

बहुत मीठा खाने पर भी अजीर्ण हो जाता है । बहुत सुख से भी ऊब होती है ।

४१ मालतीमुकुलैर्दुकूलं कल्पयिष्यसि ?

विद्धसालभञ्जिका पृ० ३१ ॥

मालती की कलियों से क्या तुम वस्त्र बनाओगे ? कोमल वस्तु का कठोर कार्यों में प्रयोग उचित नही है।

४२ मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम् ?

मृच्छकटिक पृ० ३८० ॥

जड़ कट जाने पर वृक्ष का पालन कैसे हो सकता है ? कुल के प्रधान पुरुष के नष्ट होने पर कुल नष्ट हो जाता है।

४३. यदृच्छयैव पद्माकरं प्रविष्टा कलहंसिका।

सुभद्राधनञ्जय पृ० १२७ ॥

राजहंसी अनायास ही कमलों के जलाशय में प्रविष्ट हो गई है। प्रणयिनी को स्वतः ही उसका प्रेमी प्राप्त हो गया है।

४४. राहुगृहीतोऽपि चन्द्रो न वन्दनीयो कस्य ?

मृच्छकटिक १० २० ॥

राहु से ग्रहण किया गया भी चन्द्रमा किसके लिये वन्दनीय नहीं है ? विपत्ति में पड़े हुये भी गुणी पुरुष का आदर करना चाहिये।

४५. वयं तत्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।

अभिज्ञानशाकुन्तल १.२२ ॥

हे भ्रमर ! हम तो तत्व की खोज में मारे गये, तुम निश्चय से सफल हो। बहुत ऊहापोह करने से स्पृहणीय वस्तु को दूसरे ले जाते हैं।

४६. वाडवीयमपि ज्योतिः अर्णवार्णः पानार्थमभ्यर्थयते।

अनर्घराघव २.५८ ॥

समुद्र की अग्नि को भी पीने के लिये समुद्र के जल की आवश्यकता होती है। स्वाभाविक भोजन की सबको आवश्यकता है।

४७. वासपादपविनाशेन पक्षिण आहिण्डन्ते । चारुदत्त पृ० ६५ ॥

४८. वासपादपविसंष्ठुलतया पक्षिण इतस्ततोऽप्याहिण्डन्ते ।

मृच्छकटिक पृ० ६४ ॥

निवास भूत वृक्ष के नष्ट हो जाने से पक्षी इधर उधर भटक रहे हैं । आश्रय के नष्ट हो जाने पर मनुष्य भटकता ही है ।

४६. विषधरफणारत्नालोको भयं तु भृशायते । अनर्घराघव ४.१२ ॥

विषधर सर्प के फण की मणि का प्रकाश भी बहुत डरा देता है । दुष्ट व्यक्ति का कृपा भाव भी भय का हेतु है ।

५०. विषादृते विषधरस्य मुखात् किमन्यन्निसरति ?

नागानन्द पृ० १६४ ॥

विषधर सर्प के मुख से विष के अतिरिक्त और क्या निकलता है ? दुष्ट मनुष्य दुष्टता ही प्रकट करता है ।

५१. सकलशशाङ्कविमलायां रजन्यां नास्ति दीपप्रयोजनम् ।

उभयाभिसारिका पृ० १४२ ॥

सम्पूर्ण चन्द्रमा से प्रकाशित रात्रि में दीपक का प्रयोजन नहीं है । सुन्दर प्रणयिनी से मिलन होने पर प्रेमी को अन्य सुख की आकांक्षा नहीं होती ।

५२. समूलं वृक्षमुत्पाट्य शाखाश्छेत्तुं कुतः श्रमः ?

प्रतिज्ञायौगन्धरायण ४.२० ॥

वृक्ष को जड़ सहित उखाड़ देने पर शाखाओं को काटने में कौनसा श्रम है ? मुख्य कार्य कर लेने पर आनुषङ्गिक कार्य सरलता से हो जाते हैं ।

५३. सुवर्णं कषपट्टिकां विना शिलापट्टके कष्यते ?

कर्पूरमञ्जरी पृ० ३१ ॥

सुवर्ण की परीक्षा कसौटी के पत्थर पर होती है, सामान्य पत्थर पर नहीं ।

५४ हंस एव जलेभ्यो दुग्धमुद्धरति । विद्धसालभञ्जिका पृ० ६६ ॥

हंस ही जलों से दूध को अलग कर सकता है। गुणी मनुष्य ही गुणों और दोषों की विवेचना कर सकता है।

५५· हीनकुसुमाऽपि सहकारपादपान्मकरन्दबिन्दवो निपतन्ति ।
मृच्छकटिक पृ० १८६ ॥

कम पुष्प वाले भी आम के वृक्ष से मकरन्द की बूंदें टपकती हैं। निर्धन होने पर भी सज्जन मनुष्य दान करने से नहीं जिझकते।

(६) अपराध-प्रवृति—

५६. भीताः प्रर्धाषिताः आपन्ना सुलभचारित्रवञ्चना अपराधयितुं समर्थाः भवन्ति । चारुदत्त पृ० ५८ ॥

डरे हुये, अपमानित, आपत्ति में पड़े हुये और चरित्रहीन व्यक्ति अपराध कर सकते हैं।

(७) अमृत—

५७ अमृतसंज्ञकं किमपि श्रूयते आयुर्वयोऽवस्थापनं रसायनम् ।
धूर्तविटसंवाद पृ० ६६ ॥

यौवन की आयु बनाने वाले किसी अमृत नाम के रसायन के विषय में सुना जाता है। मदिरा तारुण्य को प्रदान करती है।

(८) अरण्यनिवास- तपोवन-आश्रम—

५८. अद्भुतदर्शनबहुरसः खलु वननिवासः ।
आश्चर्यचूडामणि पृ० ८१ ॥

वन में निवास करने से अद्भुत वस्तुओं को देखने का आनन्द मिलता है।

५९ अप्रमत्तजनसंचारणीयानि गिरिकान्ताराणि ।
बालरामायण पृ० ३७५ ॥

पर्वतों और वनों में सावधान होकर घूमना चाहिये ।

६०. इक्ष्वाकवः सुतनिवेशितराज्यभाराः
निःश्रेयसाय वनमेतदुपाश्रयन्ते ।। कुन्दमाला ४ ५ ।।

इक्ष्वाकुवंशी राजा वृद्धावस्था में कल्याण प्राप्त करने के लिये पुत्रों को राज्य का भार सौंप कर इस वन का आश्रय लेते हैं । यौवन ढल जाने पर गृहस्थी का मोह त्याग कर वानप्रस्थ ग्रहण करना चाहिये ।

६१. जनपदेषु न चिरमारण्यकास्तिष्ठन्ति । महावीरचरित पृ० ८२ ।।

अरण्यवासी जन देर तक नगरों में नही ठहरते ।

६२. वनं निवासाभिमतं मनस्विनाम् । मध्यमव्यायोग १.१० ।।

मनस्वी जनों को वनों में निवास करना अच्छा लगता है ।

६३. सज्जनधनानि तपोवनानि । उरुभंग १ ६६ ।।

सज्जनों का धन तपोवन ही हैं ।

६४ सर्वजनसाधारणमाश्रमपदम् । स्वप्नवासवदत्त पृ० ३८ ।।

आश्रमों में सर्व-साधारण को जाने की अनुमति होती है ।

६५. सुखं खलु निष्कलत्राणां कान्तारप्रवेशः ।
प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ११५ ।।

पत्नी से रहित व्यक्तियों को वन में प्रवेश करने से ही सुख मिलता है ।

(९) तपोवनों के व्यवहार—

तपोवनों में विनीत भाव से प्रवेश–

६६. विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि तपोवनानि नाम ।
अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० १४७ ।।

तपोवनों में विनीत वेष में प्रवेश करना चाहिये ।

तपोवनों में अतिथिसत्कार–

६७. तपोवनानि नाम अतिथिजनस्य स्वकं गृहम् ।

स्वप्नवासवदत्तम् पृ० १६ ॥

अतिथियों के लिये तपोवन अपना ही घर होता है।

तपोवनों की रक्षा–

६८. राजरक्षितव्यानि तपोवनानि नाम ।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० १६२ ॥

राजाओं को तपोवनों की रक्षा करनी चाहिये ।

(१०) अर्थ (धन)—

६९. अतनुषु विभवेषु ज्ञातयो सन्तु नाम । अभिज्ञानशाकुन्तल ५.८ ॥

प्रचुर सम्पत्ति होने पर ही बन्धु अपने होते हैं ।

७०. अर्थतः पुरुषो नारी या नारी सार्थतः पुमान् ।

चारुदत्त ३.१७, मृच्छकटिक ३.२७ ॥

धन के प्रभाव से ही पुरुष नारी हो जाता है और नारी पुरुष हो जाती है ।

७१. अर्थरुचेरर्थसम्बन्धः प्रीतिमुत्पादयति । मुद्राराक्षस पृ० ३० ॥

धन के प्रति रुचि रखने वालों में धन का सम्बन्ध ही प्रेम उत्पन्न करता है ।

७२. अर्थस्य त्रयो विधयः– दानमुपभोगो निधानम् ।

धूर्तविटसंवाद पृ० १०७ ॥

धन की तीन गतियां हैं– दान, उपभोग और संचय करना ।

७३. यत्र श्रियस्तत्र ननु द्विषन्तः । आश्चर्यचूडामणि ३.२७ ॥

जहां समृद्धि होती है, वहीं शत्रु भी होते हैं ।

७४. सज्जनाराधनं धनम् । धूर्तविटसंवाद श्लोक १ ॥

धन का प्रयोजन सज्जनों को प्रसन्न करना है ।

७५. सर्वथा नास्त्यपिशाचमैश्वर्यम् । पादताडितक पृ० १६४ ॥

धन सम्पूर्ण रूप से नीचता को दूर करता है ।

७६. सर्वथा रागमुत्पाद्य विप्रियस्य प्रियस्य वा ।
अर्थस्यैवार्जनं कार्यमिति शास्त्रविनिश्चयः ॥

उभयाभिसारिका श्लोक १५ ॥

शास्त्रों में यह बताया गया है क्रि प्रिय हो या अप्रिय, उसके प्रति अनुराग उत्पन्न करके धन का ही अर्जन करना चाहिये ।

७७. सुष्ठु खल्विदमुच्यते अर्थं नाम शीलस्यापहरति ।

पादताडितक पृ० १६७ ॥

यह ठीक कहा गया है कि धन निश्चय से शील का हरण कर लेता है ।

(११) अविमृश्यकारिता (विना विचारे कार्य करना)—

७८ अविमृश्यकारिता हि पुंसः परं परिभवस्थानम् ।

बालरामायण पृ० ४४ ॥

विना विचारे कार्य करने से पुरुष का बहुत तिरस्कार होता है ।

(१२) अविश्वसनीयता—

७९. तटं गताया अपि नौकायाः न विश्वसितव्यम् ।

कर्पूरमञ्जरी पृ० २३८ ॥

तट पर पहुंची हुई भी नौका का विश्वास नहीं करना चाहिये । जब तक कार्य पूरा न हो जावे, तब तक निश्चिन्त नहीं रहना चाहिये ।

८०. बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः ।

अभिज्ञानशाकुन्तल १.२ ॥

अत्यधिक शिक्षित भी मनुष्यों का मन अपनी क्षमता के प्रति अविश्वासी होता है ।

८१ रुपाभिगृहीतस्य कुम्भीलकस्य का प्रतिपत्तिः ।

कौमुदीमहोत्सव पृ० २४ ॥

चोरी के धन के साथ पकड़े गये चोर का क्या विश्वास है ।

(१३) अश्वमेध—

८२. अश्वमेध इति नाम विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्र-परिभावी महानुत्कर्षः । उत्तररामचरित पृ० ३३६ ॥

सभी क्षत्रियों का पराभव करने वाला अश्वमेध यज्ञ विश्वविजयी क्षत्रियों के लिये महान् उन्नति की कसौटी है ।

(१४) असन्तोष—

८३ अहो सन्तोषबाह्यानामधर्मैकरतं मनः ।

आश्चर्यचूडामणि १.१६ ॥

असन्तोषी मनुष्यों का मन अधर्म के प्रति अनुरक्त रहता है ।

(१५) असम्भवनीयता(असम्भव बातों का होना)—

८४. अम्बुनि मज्जन्त्यलाबूनि ग्रावाणः संप्लवन्ते ।

महावीरचरित पृ० २९ ॥

तुम्बियाँ तो जल में डूब रही हैं और पत्थर तैर रहे हैं। असम्भव बातें दृष्टिगोचर होती है ।

८५. उद्वेलस्य मकराकरस्य तरङ्गावलेपं हस्तेन वारयसि ?

सुभद्राधनञ्जय पृ० ८३ ॥

क्षुब्ध समुद्र की तरंगों को हाथों से रोकते हो ? असम्भव कार्य को करने का प्रयत्न करना उचित नहीं ।

८६. कथमिव जीवतः कृकलासाच्छिरः सुवर्णं प्राप्यते ?

विद्धसालभञ्जिका पृ० ३४ ॥

क्या जीवित गिर्रगिट के सिर से स्वर्ण प्राप्त हो सकता है ? असम्भव वस्तु को पाने का प्रयत्न व्यर्थ है ।

८७ दुष्करं विषमौषधीकर्तुम् । मृच्छकटिक पृ० २९८ ॥

विष की चिकित्सा करना दुष्कर हैं । दुष्ट मनुष्य को समझाया नही जा सकता ।

८८. न वायसोच्छिष्टं तीर्थजलमुपहतं भवति ।

पद्मप्राभृतक पृ० ३२ ॥

कौवे द्वारा झूठा करने पर तीर्थ का जल अपवित्र नहीं होता । दुष्ट द्वारा आक्रान्त होने पर भी उत्तम वस्तु दूषित नहीं होती ।

८९. न हि पुलिनेषु तिलस्य सम्भवोऽस्ति । कुन्दमाला पृ० ६.२२ ॥

रेती में तिल उत्पन्न नहीं होता । राजा के हृदय में प्रेम नहीं होता ।

९०. न हि सर्वः सर्वं जानाति । मुद्राराक्षस पृ० ७ ॥

सब व्यक्ति सब कुछ नहीं जानते ।

९१. पतन्ति चन्द्रमण्डलादप्युल्काः । देवीचन्द्रगुप्तम् पृ० ८६१ ॥

चन्द्रमा से भी उल्कायें गिरती है । शक्तिशाली शान्त स्वभाव के व्यक्ति भी कभी समय आने पर क्रोध कर सकते हैं ।

९२. लूतातन्तुना गन्धगजालानसन्दानं सूचीतुण्डेन वज्रमणिभेदः ।

बालरामायण पृ० २१५ ॥

मकड़ी के जालों के तन्तुओं से गन्ध हाथी को बाँधना और सुई की नोक से हीरे को वेधना असम्भव है।

६३. स्वर्गार्यितिं न परिहासकथा रुणद्धि। पादताडितक श्लोक ५ ॥

परिहास की कथा स्वर्ग-प्राप्ति के फल को नही रोक सकती।

(१६) असम्भावित प्राप्ति—

६४. इह खलु वर्षतौ ज्योत्स्नादर्शनम्। पद्मप्राभृतक पृ० ४७ ॥

यहां तो वर्षा ऋतु में चांदनी दिखाई दे रही है। जिसके पाने की सम्भावना नहीं थी, वह प्राप्त हो गया है।

६५. का नामेयमनभ्रवृष्टिः। कौमुदीमहोत्सव पृ० २० ॥

विना मेघों के यह वर्षा कहाँ से आ गई। यह असम्भावित वस्तु मिल गई।

६६. किमेतदकालकूष्माण्डपतनम् ? कर्पूरमञ्जरी पृ० २२७ ॥

यह क्या असमय में पेठे का फल गिर गया ? असम्भावित वस्तु प्राप्त हो गई।

६७. भिक्षां गतो निमन्त्रनिमन्त्रणं प्राप्तः।
कौमुदीमहोत्सव पृ० २० ॥

भिक्षा के लिये गये भिक्षुक को निमन्त्रण प्राप्त हो गये। स्वल्प वस्तु की याचना करने वाले को सम्भावना से भी अधिक वस्तु प्राप्त हो गई।

(१७) अहङ्कार—

६८. पारमार्थिकविनयदुर्विभाव्यो निपुणबुद्धिग्राह्यो महानहङ्कार-ग्रन्थिः। महावीरचरित पृ० ७२ ॥

महापुरुषों का अहंकार उनके वास्तविक विनय के कारण पहचान में नहीं आता। उसको निपुण बुद्धि से ही जाना जा सकता है।

(१८) आकार से भावों का ज्ञान—

९९. आकारसंवरणमप्याकार एव। पद्मप्राभृतक पृ० ३८॥

छुपाने पर भी आकार से भावों का ज्ञान हो जाता है।

१००. आकृतिविशेषेषु आदरः पदं करोति।

मालविकाग्निमित्र पृ० ६॥

विशिष्ट आकृतियों के प्रति स्वभावतः आदर उत्पन्न होता है।

१०१ चक्षुषि सर्वे भावाः नियताः। धूर्तविटसंवाद पृ० १००॥

आंखों में सभी भाव निहित रहते हैं। आँखों से अन्तर्निहित भावों का ज्ञान हो जाता है।

(१९) आचार्य-शिष्य—

१०२. पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः।

मालविकाग्निमित्र १.६॥

विशेष पात्र में निहित शिल्प शिल्पी के अनेक गुणों को प्रकट करता है। योग्य शिष्य में निहित विद्या आचार्य के गुणों को प्रकट करती है।

१०३. प्रभवत्याचार्यः शिष्यस्य। मालविकाग्निमित्र पृ० २६॥

आचार्य का शिष्य पर सभी प्रकार से अधिकार होता है।

१०४. विनेतुरद्रव्यपरिग्रहोऽपि बुद्धिलाघवं प्रकाशयति।

मालविकाग्निमित्र पृ० २३॥

गुरु द्वारा अयोग्य शिष्य को स्वीकार करने से उसकी बुद्धि की लघुता प्रकट होती है।

(२०) आत्म-प्रशंसा का अनौचित्य—

१०५. नोत्सहन्ते महात्मानो ह्यात्मानमुपस्तोतुम् ।

पंचरात्र पृ० २१ ॥

महान् पुरुष अपनी स्तुति स्वयं नहीं करते ।

१०६. य आत्मगुणान् स्वयमेव मन्त्रयते कथमेतेऽकार्यं न करिष्यन्ति ।

चारुदत्त पृ० २२ ॥

जो व्यक्ति अपने गुणों की स्वयं ही प्रशंसा करते हैं, वे किस प्रकार बुरे कार्य को नहीं करेंगे ? आत्मप्रशंसक सभी कुत्सित कार्य कर सकते हैं ।

(२१) आत्मरक्षा—

१०७. आत्मवधः प्रथमः पातकेषु । बालरामायण पृ० ७८ ॥

आत्महत्या सबसे बड़ा पाप है ।

१०८. आत्मविक्रयिणः पापाः प्राणत्यागेऽप्यनीश्वराः ।

चण्डकौशिक ५.१५ ॥

अपने आपको बेच देने वाले व्यक्तियों को प्राणों का परित्याग करने का भी अधिकार नहीं ।

१०९. आत्मापि नूनं रक्षितव्यः । वीणावासवदत्त पृ० ४५ ॥

अपने आपकी निश्चय से रक्षा करनी चाहिये ।

११०. एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ।

पादताडितक पृ० १५३ ॥

जीवित रहने वाले व्यक्ति को सौ वर्ष बाद भी आनन्द मिल सकता है ।

१११. को हि नाम जीवितेन शरीरं विक्रेष्यति ?

चारुदत्त पृ० १११ ॥

प्राणों के रहते शरीर को कौन बेचेगा ?

११२. रक्षितव्याः ननु प्राणाः । वीणावासवदत्त पृ० ४६ ॥

प्राणों की निश्चय से रक्षा करनी चाहिये ।

[२२] आशा—

११३. गते भीष्मे हते द्रोणे कर्णे च विनिपातिते ।
आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ॥

वेणीसंहार ५.२३ ॥

भीष्म के चले जाने पर, द्रोण के मारे जाने पर और कर्ण के गिरा दिये जाने पर भी आशा बलवती है कि शल्य पाण्डवों को जीत लेगा । पुनः पुनः असफल होने पर भी मनुष्य सफल होने की आशा करता है ।

११४. गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ।

अभिज्ञानशाकुन्तल ४.१६ ॥

महान् विरह-दुःख को आशा का बन्धन ही सहन कराता है ।

[२३] आश्रय-विनाश—

११५. छायार्थं ग्रीष्मसन्तप्तः यामेवाहं समाश्रितः ।
अजानता मया सैव पत्रैः शाखा वियोजिता ॥

मृच्छकटिक ४.१८ ॥

ग्रीष्म से सन्तप्त होकर छाया के लिये मैने जिस वृक्ष का आश्रय लिया था,

न जानते हुये मैंने उसी शाखा को पत्तों से रहित कर दिया।

[२४] आहिताग्नि—

११६. आहिताग्नेर्नान्येनाग्निना संस्कारो विहितः।

नागानन्द पृ० १६७–१६८ ॥

अग्नियों का आधान करने वाले व्यक्ति का अन्तिम सँस्कार अन्य अग्नि से नहीं किया जा सकता।

११७. सङ्कटा ह्याहिताग्नीनां प्रत्यवायैः गृहस्थता।

उत्तररामचरित १.८, महावीरचरित ४.३३ ॥

अग्नियों का आधान करने वाले व्यक्ति का गृहस्थ धर्म सदा विघ्नों से भरा होता है।

[२५] इन्द्र—

११८. उर्वीमुद्दामशस्यां जनयतु विसृजन् वासवो वृष्टिमिष्टाम्।

प्रियदर्शिका ४.१२ ॥

यज्ञों के करने से प्रसन्न इन्द्र यथायोग्य वृष्टि करके पृथिवी पर प्रचुर अन्न उपजावे।

११९. सचकितमवधाय कर्णमस्मिन् सुरपतिकर्षणमन्त्रनिःस्वनेषु।
विरचयति शची सदैव नूनं स्रजमवधूय वियोगवेणिबन्धम्॥

कुन्दमाला ४.१ ॥

इन्द्र को आकृष्ट करने वाले मन्त्रों का पाठ करने पर इन्द्र को यज्ञकर्ता के पास आना ही होता है।

[२६] इन्द्राणी–

१२०. **कन्यकानां किल देवतेन्द्राणी । सुभद्राधनञ्जय पृ० ५५ ॥**
कन्याओं की देवता इन्द्राणी होती है ।

[२७] इन्द्रिय-उच्छृंखलता—

१२१. **विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसञ्चितं धर्मम् ।**
मृच्छकटिक ८.४ ॥
विषम इन्द्रियरूपी चोर चिरकाल से सञ्चित धर्म का अपहरण कर लेते हैं ।

[२८] ईर्ष्या–

१२२. **प्रायः समानविद्याः परस्परयशःपुरोभागाः ॥**
मालविकाग्निमित्र पृ० २६ ॥
समान विद्या वाले वाले प्रायः ईर्ष्यावश एक दूसरे के यश की निन्दा करते हैं ।

[२९] उपदेश की ग्राह्यता—

१२३. **उपदेशं विदुः शुद्धं सन्तस्तमुपदेशिनः ।**
श्यामायते न विद्वत्सु यः काञ्चनमिवाग्निषु ॥
मालविकाग्निमित्र २.६ ॥

उपदेश देने वाले के उसी उपदेश को शुद्ध माना जाता है, जो विद्वानों के मध्य उसी प्रकार मलिन नहीं होता, जैसे कि अग्नि में शुद्ध सोना मलिन नहीं होता ।

[३०] ऐश्वर्योन्माद-

१२४. मूर्छन्त्यमी विकाराः प्रायेणैश्वर्यमत्तानाम् ।

अभिज्ञानशाकुन्तल ५.१८ ॥

ऐश्वर्य से उन्मत्त व्यक्तियों में इस प्रकार के विकार उत्पन्न हो ही जाते हैं।

[३१] औद्धत्य—

१२५. अण्डभेदनं क्रियते प्रश्रयश्च । महावीरचरित पृ० १०३ ॥

औद्धत्य भी दिखाते हो और विनीत भाव भी प्रकट करते हो।

[३२] कठोर व्यवहार का औचित्य—

१२६. न च खलु अनुत्पीडितः सहकारपृष्ठग्रन्थिः रससर्वस्वं मुञ्चति ।

विद्धसालभञ्जिका पृ० ६ ॥

विना मसले आम की मंजरी रस की सुगन्धि को नहीं छोड़ती । विना कठोर व्यवहार के कंजूस से कुछ पाना सम्भव नही है ।

[३३] कन्या-

कन्या का परकीय धन होना—

१२७. अर्थो हि कन्या परकीय एव । अभिज्ञानशाकुन्तल ४.२२ ॥

कन्या दूसरे का ही धन है ।

१२८. कन्यायाश्च परार्थतैव कि मता । महावीरचरित १.३० ॥

कन्या दूसरे के लिये ही होती है ।

कन्या का विवाह—

१२९. अनुरूपेषु कुलेषु कन्यानां विवाहः कर्तव्यः ।

वीणावासवदत्त पृ० २ ॥

अनुरूप कुलों में ही कन्या का विवाह करना चाहिये ।

१३०. कन्यायाः वरसम्पत्तिः पितुः प्रायः प्रयत्नतः ।
भाग्येषु शेषमायत्तम् ॥ प्रतिज्ञायौगन्धरायण २.५ ॥

कन्या को वररूप सम्पत्ति पिता के प्रयत्नों से मिलती है । शेष तो भाग्य के आधीन है ।

१३१. दैवमत्र कन्याप्रदानेऽधिकृतम् ।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ४४ ॥

कन्या का विवाह करने में दैव को ही अधिकार है । कन्या के विवाह में भाग्य ही प्रबल है ।

कन्या का संरक्षक के आधीन रहना—

१३२. प्रभवति प्रायः कुमारीणां जनयिता दैवं च ।

मालतीमाधव पृ० १११ ॥

कुमारी कन्याओं पर उसके पिता को और दैव को ही अधिकार होता है ।

कन्या के मनोगत भाव—

१३३. निर्भिन्नं खलु हृदयरहस्यं कोपयति कन्यकाजनम् ।

तपतीसंवरण पृ० ४८ ॥

हृदय के रहस्य को प्रकट करने से कन्यायें कुपित होती हैं ।

१३४. निष्कम्पदारुणामु कुलकन्यकासु दूनयति हृदयं मनुष्याणामीदृशाद्दुरभिषङ्गात् । मालतीमाधव पृ० ३१२ ॥

मनुष्यों द्वारा इस प्रकार की दुरभिसन्धि कोमल हृदय वाली कुलीन कन्याओं

के हृदय को पीड़ित करती है।

कन्या को देखने में दोषाभाव—

१३५. कन्यकादर्शनं निर्दोषम्। प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ६३ ॥

कन्या को देखने में कोई दोष नहीं है।

१३६. निर्दोषदर्शना कन्यकाः भवन्ति। नागानन्द पृ० ३८ ॥

कन्याओं को देखना दोष से रहित है।

कन्या–पिता के भाव—

चिन्ता–

१३७. कन्यापितुर्हि सततं बहु चिन्तनीयम्। अविमारक १.२ ॥

कन्या का पिता बहुत चिन्तित रहता है।

दुःख–

१३८. जनकस्यैकदुःखहेतुः कुमारी। बालभारत १.८० ॥

कुमारी कन्या पिता के दुःख का एक मात्र कारण है।

१३९. दुःखं नित्यं दुहितृहेतुतः। वीणावासवदत्त १.१८ ॥

कन्या के कारण पिता को सदा दुःख रहता है।

वन्दनीयता–

१४०. कन्यापितृत्वं खलु वन्दनीयम्। अविमारक १.६ ॥

कन्या का पिता होना सदा आदर के योग्य है।

स्नेह–

१४१. न खलु मातापितरौ भर्तृवियोगदुःखितां दुहितरं चिरं द्रष्टुं पारयतः। अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४१२ ॥

पति के वियोग से दुःखित कन्या को माता-पिता अधिक समय तक देख नहीं सकते।

[३४] करुणा—

१४२. राज्यस्य कृते स कथं प्राणिवधक्रौर्यमनुमन्यते।

नागानन्द ३.१७ ॥

राज्य को प्राप्त करने के लिये वह प्राणियों के वध रूप क्रूरता की अनुमति कैसे दे सकता है। करुणा से भरे हृदय वाले व्यक्ति किसी भी लोभ में क्रूर नही होते।

[३५] कर्म तथा कर्मफल—

१४३. अकारणं रूपमकारणं कुलं महत्सु नीचेषु च कर्म शोभते।

पंचरात्र २.३३ ॥

किसी का रूप या कुल उसके महान् होने का हेतु नहीं है, चाहे कुल ऊँचा हो या नीचा, उसका कर्म ही उसको सुशोभित करता है।

१४४. अन्धस्य कूपपतनं संवृत्तम्। कौमुदीमहोत्सव पृ० १० ॥

अन्धा कुये में गिर गया। विना परिणाम का विचार किये कार्य करने से पतन होता है।

१४५. इह खलु विषमः पुराकृतानां भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः।

हनूमन्नाटक १४.४६ ॥

पहले किये गये कर्मों का बिषम परिणाम प्राणियों को भोगना ही होता है।

[३६] कवि की निरङ्कुशता—

१४६. निरङ्कुशाः कविवाचः। बालरामायण पृ० ११८ ॥

कवियों की वाणी पर किसी का अंकुश नहीं होता।

[३७] कष्टकर भाव—

१४७. कष्टा वेधव्यथा कष्टो नित्यमुद्वहनश्रमः ।
श्रवणानामलङ्कारः कपोलस्य तु कुण्डलम् ।

अनर्घराघव १.४० ॥

कानों को वेधन करने की पीड़ा कष्टकर है, नित्य ढोने का श्रम कष्टकर है । कानों के अलंकार कुण्डल कपोलों को सुशोभित करते हैं । एक को कष्ट देने वाली वस्तु दूसरों को सुख दे सकती है ।

१४८. कष्टोऽयं खलु भृत्यभावः । रत्नावली पृ० १० ॥

सेवक होना निश्चय मे कष्टकर है ।

[३८] कामदेव—

१४९. अषडक्षीणषाड्गुण्यमन्त्री मकरकेतनः । अनर्घराघव ३.६ ॥

कामदेव सदा षड्गुण (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव) का प्रयोग करने वाला मन्त्री है । प्रेमिका को प्रेम करने वाला कामी ६ गुणों के प्रयोग से भी उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करता है ।

१५०. अहो नु खलु कामो निर्मर्यादः ।

आश्चर्यचूडामणि पृ० १२५ ॥

कामदेव निश्चय से मर्यादा से रहित होता है ।

१५१. कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने ।
नमोऽस्त्ववार्यवीर्याय तस्मै कुसुमधन्वने ॥

बालरामायण ३ ११ ॥

कपूर के समान जल जाने पर भी जो कामदेव प्रत्येक व्यक्ति को पराजित करने की शक्ति रखता है, अशक्य पराक्रम वाले उस कामदेव को नमस्कार है ।

१५२. कामो वामः । मृच्छकटिक पृ० १६४, १६६ ॥

कामदेव सदा विपरीत आचरण वाला है ।

१५३. कामो हि भगवाननवगीत उत्सवस्तरुणजनस्य ।

चारुदत्त पृ० ४२ ॥

तरुण जनों के लिये कामदेव प्रशंसनीय उत्सव है ।

१५४. क्व मनोभवः क्व गुणसंग्रहणम् । आश्चर्यचूडामणि ४.१३ ॥

कहां तो कामदेव और कहां गुणों का संग्रह । कामदेव से पीड़ित मनुष्य के गुण नष्ट होने लगते हैं ।

१५५. स्मर एव तापहेतुः । अभिज्ञानशाकुन्तल ३.६ ॥

कामदेव ही संताप का कारण होता है ।

[३९] कामविनाशक भाव—

१५६. ग्रामे वासः श्रोत्रियकथनं परतन्त्रता भृत्यभावः ।
आर्जवयुता च नारी मदनान्तकारिणः केचित् ॥

धूर्तविटसंवाद श्लोक ३८ ॥

ग्राम में निवास करना, ब्राह्मणों का उपदेश, पराधीनता, सेवक होना और नारी का विनम्र होना, ये सब भाव काम-भाव को नष्ट करते हैं ।

१५७. पादग्रहणेऽवश्यं बाष्पः संजायते प्रणयिनाम् ।
अश्रुविमोक्षे दैन्यं दैन्योत्पत्तौ कुतः कामः ॥

धूर्तविटसंवाद श्लोक ३७ ॥

प्रणयी द्वारा प्रणयिनी के पैर पकड़ लेने पर आँसू आ जाते हैं । आँसू गिरने पर दीनता उत्पन्न होती है और दीनता उत्पन्न होने पर काम का भाव कहाँ रह सकता है ।

१५८. स्तब्धता च कामस्य महान् शत्रु : ।

धूर्तविटसंवाद पृ० १०५ ॥

स्तब्धता काम-भावना की महान् शत्रु है ।

(४०) कामविलास—

१५९. अकृतार्थेऽपि मनसिजे रतिमुभयप्रार्थना कुरुते ।

अभिज्ञानशाकुन्तल २.१ ॥

कामदेव के सफल न होने पर भी प्रणयी-प्रणयिनी दोनों की अभिलाषा प्रेम को उत्पन्न करती है ।

१६०. अनुवृत्तिर्हि कामो मूलम् । धूर्तविटसंवाद पृ० १०५ ॥

प्रिया के अनुकूल व्यवहार करना ही काम-भावना का मूल है ।

१६१. अन्योन्यस्य गुणोद्भवैरकृतकै रागोच्छ्रयः कारणम् ।
कामिजनस्य संगमविधौ ॥ उभयाभिसारिका श्लोक ५४ ॥

प्रणयी जनों के मिलन में एक दूसरे के स्वाभाविक गुण ही प्रणय को बढाते हैं ।

१६२. कामोऽर्थनाशः पुंसाम् । धूर्तविटसंवाद पृ० १०७ ॥

काम विलास पुरुषों का धन नष्ट करते है ।

१६३. कामी स्वतां पश्यति । अभिज्ञानशाकुन्तल २.२ ॥

कामी व्यक्ति केवल अपनी अनुकूलता को ही देखता है ।

१६४. चेष्टाप्रतिरूपिका कामिजनमनोवृत्तिः ।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० १७२ ॥

कामी मनुष्य की मनोवृत्ति अपनी चेष्टाओं के अनुरूप होती है ।

१६५. तमहं न पश्यामि यः स्त्रीषु प्रसङ्गं न गच्छेत् ।

धूर्तविटसंवाद पृ० १११ ॥

मैं ऐसे व्यक्ति को नहीं देखता हूं, जो स्त्रियों के प्रति आसक्त नहीं होता। नारी के प्रति पुरुष की आसक्ति स्वाभाविक ही है।

१६६. दरदलितस्तनीषु पुनर्निवसति मकरध्वजरहस्यम्।

कर्पूरमञ्जरी २ ४६॥

ईषत् विकसित स्तनों वाली युवतियों में कामदेव का रहस्य निवास करता है। सद्य: स्फुटित यौवन वाली युवती अधिक आकर्षक होती है।

१६७. दुर्विहगेभ्यो रक्षितव्योऽधरः। धूर्तविटसंवाद पृ० ८७॥

अधर की दुष्ट पक्षियों से रक्षा करनी है। सुन्दर युवती को उद्दण्ड प्रेमियों से बचाना चाहिये।

१६८. धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति॥

मृच्छकटिक ५.४६॥

उनके जीवन धन्य हैं, जो घर में आई हुई कामिनियों के वर्षा जल से शीतल और भीगे अंगों का अपने अंगों में आलिंगन करते हैं।

१६९. न कालहरणक्षमाः प्रियजनसमागमोत्सवाः।

बालरामायण पृ० १४२॥

प्रिय जनों के मिलन के उत्सवों में समय की प्रतीक्षा सहन नहीं होती।

१७०. ननु सायंप्रातः होमो वर्तते। पद्मप्राभृतक पृ० ३८॥

निश्चय से सायंप्रातः हवन होता है। प्रिया से सायंप्रातः मिलन होता है।

१७१. परस्परव्यलीकं सहते कामिजनः।

उभयाभिसारिका पृ० १२२॥

प्रणयिजन एक दूसरे के दोषों को सहन कर लेते हैं।

१७२. मनोमयं व्याधिमदारुणौषधम्। पद्मप्राभृतक श्लोक ३७॥

काम के रोग की चिकित्सा दुष्कर है।

१७३. रागो हि रञ्जयति वित्तवतां न शक्तिः ।

पादताडितक श्लोक २१ ॥

धनी पुरुषों का भी प्रेम ही प्रेमिका को प्रसन्न करता है, धन की शक्ति नहीं।

१७४. लघुरूपोऽपि बलवान् मदनव्याधिः । पद्मप्राभृतक पृ० ६ ॥

काम का रोग छोटा होता हुआ भी बलवान् होता है ।

१७५. लज्जा विलासयौतुकं कामिजनस्य । पद्मप्राभृतक पृ० ५७ ॥

कामी पुरुषों के लिये लज्जा तो विलास का दहेज है ।

१७६. वक्त्रं च वर्तितांसं नियमन्ति देहेन झटिति वलितेन ।
प्रथमोपनतवल्लभसंगमेन नटिता मुग्धमहिला : ॥

बालरामायण ५.१४ ॥

जब भोली-भाली महिलाओं का प्रिय के साथ प्रथम मिलन होता है, तो वे शरीर को मोड़ कर शीघ्र ही कन्धों के साथ मुख को मोड़ लेतीं है । प्रथम मिलन में प्रणयिनी की स्वाभाविक लज्जा प्रकट होती है ।

१७७ विघ्नितसमागमसुखो मनसिशयः शतगुणीभवति ।

विक्रमोर्वशीय ३.८ ॥

मिलन में विघ्न पड़ जाने पर काम का सुख सौ गुना बढ़ जाता है ।

१७८. विविक्तविस्रम्भरसो हि कामः । **मृच्छकटिक** ८.३० ॥

काम का आनन्द एकांत विश्वस्त स्थान में मिलता है ।

१७९. शाठ्यमनृतं मदो मात्सर्यमवमतं तथा प्रणयकोपः ।
मदनस्य योनयः किल ॥ **धूर्तविटसंवाद श्लोक ६८ ॥**

काम की भावना को बढाने वाले निम्न हेतु हैं– धूर्तता, झूठ बोलना, मद, मात्सर्य, अपमान और प्रणयकोप ।

१८०. सम्मानितापि न तथा मुदभ्युपैति मात्रानुजेन जनकेन न तथाग्रजेन।

आश्वासितापि रमणी रमणेन तूर्णं प्रेम्णा यथा मधुरनिर्मल-दृष्टिपातैः **हनूमन्नाटक १२ ६ ॥**

माता, पिता, अनुज और अग्रज द्वारा सम्मानित होती हुई भी रमणी उतना शीघ्र आश्वासन नहीं पाती, जितना कि प्रेमी के प्रेमपूर्ण मधुर निर्मल दृष्टि-पातों से पाती है।

१८१. सर्वोऽपि विविक्तकामः कामी भवति। पद्मप्राभृतक पृ० ५२ ॥

सभी प्रेमियों की कामनायें एकान्त में पूरी होती है।

१८२. सुकुमारः खलु कामिनीसंपरिग्रहः।

पद्मप्राभृतक पृ० १६–२० ॥

कामिनियों का संग्रह और सम्पर्क बहुत कोमल-मधुर होता है।

१८३. स्त्रैणः पुंसां नवपरिगमः काममुन्मादहेतुः।

बालरामायण ३.२६ ॥

पुरुषों के लिये स्त्रियों के साथ नया समागम बहुत अधिक उन्माद का कारण होता है।

(४१) कायरता—

१८४. कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।

स्वप्नवासवदत्त ६.७ ॥

जो कायर और असमर्थ होते हैं, उनमें उत्साह उत्पन्न नहीं होता।

१८५. क्लीबानामेव युद्धेषु प्राणत्राणाय राम धीः।

हनूमन्नाटक १४.३० ॥

नपुंसक ही युद्धों में प्राणों की रक्षा का विचार करते हैं।

(४२) कार्य में अनिश्चय—

१८६. कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति मे मनः ।

अभिज्ञानशकुन्तल २.१७ ॥

कार्यों के भिन्न-भिन्न स्थानों पर होने से मन में द्विविधा उत्पन्न होती है ।

१८७. त्रिशंकुरिवान्तराले तिष्ठ । अभिज्ञानशाकुन्तल २.१९ ॥

त्रिशंकु के समान बीच में ही ठहरो । कार्य में अनिश्चय होने पर मनुष्य मध्य में रह कर किसी भी कार्य को नहीं कर पाता ।

(४३) कार्य में निष्फलता—

१८८. ऊषरक्षेत्रपतितः बीजमुष्टिः निष्फलम् ।

मृच्छकटिक पृ० २९४ ॥

ऊसर खेत में गिरा हुआ बीज निष्फल होता हैं ।

(४४) कार्य-सन्देह में प्रमाण—

१८९. सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः ।

अभिज्ञानशाकुन्तल १.१७ ॥

कार्यों में सन्देह होने पर सज्जनों के अन्तःकरण की वृत्तियाँ ही प्रमाण होती हैं ।

(४५) कूटनीति—

१९०. अकालः खलु स्वबलप्रधानविरोधस्य । वेणीसंहार पृ० १३२ ॥

अपनी प्रधान सेनाओं के विरोध का यह समय नहीं है । राजाओं को सेनाओं के विरोध का खतरा नहीं उठाना चाहिये ।

१६१. अचिराधिष्ठितराज्यः शत्रुः प्रकृतिष्वरूढमूलत्वात् ।
नवसंरोहणशिथिलस्तरुरिव सुकरः समुद्धर्तुम् ।।

मालविकाग्निमित्र १.८ ।।

जिसको राज्य पर अधिकार किये हुये अधिक समय नहीं हुआ है, और प्रजाओं में जिसकी जड़े नहीं जमी हैं, ऐसे शत्रु राजा को उखाड़ फैंकना उतना ही सरल है, जैसे कि नये ढीले वृक्ष को उखाड़ना ।

१६२ कालसर्पखलीकारखर्जूलता न खलु सुखाकरी वृश्चिकमन्त्रतान्त्रिकस्य । अनर्घराघव पृ० २३६ ।।

बिच्छू के मन्त्रों को जानने वाले तान्त्रिक के लिये काले साँप के विष का उपाय करना सरल नहीं है । कूटनीति में कम निपुण राजा अधिक कूटनीति में निपुण शत्रु राजा को पराजित करने में समर्थ नहीं होता ।

१६३. **कालापेक्षी दण्डनीतिप्रयोगः । अनर्घराघव पृ० २७६** ।।

दण्डनीति के प्रयोग में समय की प्रतीक्षा करनी चाहिये ।

१६४. काले भेदबीजमुप्तमवश्यं फलमुपदर्शयति ।

मुद्राराक्षस पृ० १२० ।।

समय पर बोया गया भेद का बीज अवश्य ही फल को दिखाता है ।

१६५. क्षितेरानन्तर्यादपकृत् । महावीरचरित ४ ७ ।।

जिनके राज्यों की सीमायें मिलती हैं, वे परस्पर स्वाभाविक शत्रु होते हैं ।

१६६. जनं विद्वानेकः सकलमतिसन्धाय कपटै-
स्तटस्थः स्वानर्थान् घटयति च मौनं च भजते ।।

मालतीमाधव १.१५ ।।

विद्वान् मनुष्य अकेला ही सब मनुष्यों को कपटों से ठग कर तटस्थ सा रहता हुआ अपने स्वार्थों को पूरा करता है और चुप रहता है ।

१९७ न कदापि शार्दूले मृगीणां विश्रम्भः ।

आश्चर्यचूडामणि पृ० १३६ ॥

हरिणियां कभी चीते पर विश्वास नही करतीं । कमजोर को चाहिये कि चालाक क्रूर व्यक्ति पर कभी विश्वास न करे ।

१९८ न युक्तं प्राकृतमपि शत्रुमवज्ञातुम् । मुद्राराक्षस पृ० २० ॥

साधारण शत्रु की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ।

१९९. नियुक्तहस्तार्पितराज्यभारास्तिष्ठन्ति ये स्वैरविहारसाराः ।
विडालवृन्दाहितदुग्धमुद्राः स्वपन्ति ते मूढधियः क्षितीन्द्राः ॥

हनूमन्नाटक ९ ३४ ॥

जो मूर्ख बुद्धि वाले राजा मन्त्री आदि के हाथों में राज्य के भार को सौंप कर स्वेच्छाचार में निमग्न रहते है, वे मानों दूध की रक्षा के लिये बिलाव को नियुक्त करके सोते है । राजा को चाहिये कि सावधान होकर नीति का अवलम्बन करते हुये स्वयं राज्य की देखभाल करे ।

२००. निसर्गकर्कशा एव नयवादिनां प्रवृत्तयः ।

तापसवत्सराज पृ० ३८ ॥

नीतिज्ञों की प्रवृत्तियाँ स्वभाव से कठोर होती हैं ।

२०१ बलवता सह को विरोधः । मृच्छकटिक ६.१ ॥

बलवान के साथ विरोध नही करना चाहिये ।

२०२. लघ्वपि व्यसनपदमभियुक्तस्य कृच्छसाध्यं भवति ।

महावीरचरित पृ० १२७ ॥

आक्रमण किये जाने पर यदि कोई छोटा सा भी दोष रह गया हो तो वह कष्टसाध्य होता है ।

२०३. समानवंश्या ननु राज्ञो रिपवः । वीणावासवदत्त पृ० ४६ ॥

समान वंश वाले लोग निश्चय से राजा के शत्रु होते हैं ।

२०४. **सुप्तमत्तकुपितानां हि भावज्ञानं द्रष्टव्यम् ।**

बालरामायण पृ० २२ ॥

सोये हुये, मदमत्त और कुपित मनुष्यों के भावों को पहचानना चाहिये ।

२०५. **हीयमानाः किल रिपोर्नृपाः संदधते परान् ।**

वेणीसंहार ५.६ ॥

शत्रु से कमजोर होने पर ही राजा लोग उनसे सन्धि कर लेते हैं ।

(४६) कृतघ्नता—

२०६ **इह कृतघ्नता सर्वपापीयसी । धूर्तविटसंवाद पृ० १०६ ॥**

कृतघ्नता सबसे बड़ा पाप है ।

(४७) कृतज्ञता—

२०७. **तिर्यग्योनयोऽपि उपकृतमवगच्छन्ति ।**

प्रतिमानाटक पृ० १५७ ॥

पशु-पक्षी भी उपकार को मानते हैं ।

(४८) कैशिकगान—

२०८. **कैशिकाश्रयं हि गानं पर्यायशब्दो रुदितस्य ।**

पद्मप्राभृतक पृ० ४४ ॥

कैशिकी वृत्ति का आश्रय लेकर गाना रोने का ही पर्याय है ।

(४९) क्रोध—

२०९. **उपेक्षितानां मन्दानां धीरसत्वैरवज्ञया ।**

अत्रासितानां क्रोधान्धैर्भवत्येषा विकत्थना ॥

वेणीसंहार ३.४३ ॥

धैर्यशाली वीरों की अवहेलना से उपेक्षित तथा मन्द लोग क्रोध में अन्धे होकर डींगें मारा करते हैं।

२१०. **कामक्रोधयोश्च श्रेयः परिपन्थिनीं वृत्तिम् ।**

चण्डकौशिक पृ० ४६ ॥

काम और क्रोध का व्यवहार कल्याण का शत्रु है।

२११. **क्रोधः कुपुरुषस्येव स्वगात्रेष्ववसीदति ।**

मृच्छकटिक १ ५५ ॥

२१२. **रोषः कुपुरुषस्येव स्वाङ्गेष्ववसीदति । चारुदत्त १ २८ ॥**

कायर पुरुष का क्रोध अपने ही अंगों को पीडित करता है।

(५०) क्षत्रिय—

क्षत्रिय तेज-पराक्रम—

२१३. **पराक्रमोपनतामेव सिद्धिमभिकांक्षते क्षात्रं तेजः ।**

कौमुदीमहोत्सव पृ० ३ ॥

क्षत्रियों का तेज अपने पराक्रम से ही सफलता पाना चाहता है।

२१४. **बाणाधीना क्षत्रियाणां समृद्धिः । पंचरात्र १.२४ ॥**

क्षत्रियों की समृद्धि उनके बाणों के ही अधीन रहती है।

२१५. **बाह्वोर्वीर्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम् । उत्तररामचरित ५.३२ ॥**

क्षत्रियों का पराक्रम उनकी भुजाओं में रहता है।

२१६. **मृत्युरेव प्रभवति क्षत्रियाणाम् । उरुभंग पृ० १४ ॥**

क्षत्रियों पर मृत्यु ही समर्थ हो सकती है।

२१७. यावत्गात्रं तावत् समरविजयिनो जिता हताश्च ।

वेणीसंहार पृ० २०८ ।।

क्षत्रियत्व की भावना से ही समरविजयी वीर या तो जीतते हैं या मर जाते हैं।

क्षत्रिय के कर्तव्य —

२१८. **दातव्यं रक्षितव्यं च यौद्धव्यं क्षत्रियैरिति ।**

चण्डकौशिक २.१७ ।।

क्षत्रियों के कर्तव्य है– दान देना, रक्षा करना और युद्ध करना ।

क्षत्रिय द्वारा अश्वमेध यज्ञ—

२१९ **अश्वमेध इति विश्वविजयिनां क्षत्रियाणामूर्जस्वलः सर्वक्षत्र-परिभावी महानुत्कर्षः ।** **उत्तररामचरित पृ० ३३६ ।।**

सब क्षत्रियों का पराभव करने वाला अश्वमेध यज्ञ तेजस्वी विश्वविजयी क्षत्रियों के लिये महान् उन्नति की कसौटी है।

क्षत्रिय द्वारा दुष्ट-दमन -

२२० **दुर्दान्तानां दमनविधयः क्षत्रियेष्वायतन्ते ।**

महावीरचरित ३.३४ ।।

उद्दण्ड दुष्टों का दमन क्षत्रियों के ही आधीन है।

क्षत्रिय द्वारा प्रजा-पालन -

२२१. **सर्वाः प्रजाः क्षत्रियाणां पुत्रशब्देनाभिधीयन्ते ।**

मध्यम व्यायोग पृ० ३५ ।।

सभी प्रजायें क्षत्रियों की पुत्र कहाती हैं।

क्षत्रिय द्वारा प्रतिज्ञा-पालन—

२२२. न युक्तं वीरस्य क्षत्रियस्य प्रतिज्ञातं शिथिलयितुम् ।
वेणीसंहार पृ० २४४ ॥

वीर पुरुष को अपनी प्रतिज्ञा को शिथिल करना उचित नहीं ।

(५१) गणेश—

२२३ जम्भारिमौलिमन्दारमालिकामधुचुम्बिनः ।
पिबेयुरन्तरायाब्धिं हेरम्बपदपांसवः ॥

कुन्दमाला १ १ ॥

इन्द्र के माथे पर रखी मन्दार की मालाओं के पुष्परस का चुम्बन करने वाले गणेश के चरणों की धूलियाँ विघ्न रूपी समुद्र का पान कर ले । सभी विघ्नों को नष्ट करें ।

(५२) गाम्भीर्य—

२२४. अतिगम्भीरा हि पुरुषा आत्मनोऽभिनवं चापलं सर्वतो रक्षन्ति ।
तपतीसंवरण पृ० ११८ ॥

अति गम्भीर पुरुष अपने आपको चंचलता से सदा बचाते हैं ।

२२५. वहन्ति शोकशङ्कुं च कुर्वन्ति च यथोचितम् ।
कोऽप्येष महतां हन्त गाम्भीर्यानुगुणो गुणः ॥

बालरामायण ७.१६ ॥

गाम्भीर्य के अनुरूप अनिर्वचनीय गुणों से सम्पन्न महान् व्यक्ति शोकरूपी कील को धारण करते हुये भी यथायोग्य ही कार्य करते हैं ।

(५३) गुण—

गुण के प्रति अनुराग और आदर—

२२६. गुणवान् रक्षितव्यो भवति। **चारुदत्त पृ० ५८ ॥**

गुणी पुरुष की सदा रक्षा करनी चाहिये।

२२७. गुणशस्त्रैर्वयं येन शस्त्रवन्तोऽपि निर्जिताः।

मृच्छकटिक १.४५ ॥

शस्त्रधारी व्यक्ति भी गुणरूपी शस्त्रों से जीत लिये जाते है।

२२८. गुणाः खल्वनुरागस्य कारणं न पुनर्बलात्कारः।

मृच्छकटिक पृ० ३४ ॥

गुण ही अनुराग के कारण हैं, बलात्कार नहीं।

२२९. गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।

उत्तररामचरित ४.११ ॥

गुणियों का आदर गुणों के कारण होता है, लिंग या आयु के कारण नहीं।

२३०. गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः।
कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥

स्वप्नवासवदत्त ४.९ ॥

महान् गुणों का सत्कार करने वाले पुरुष तो इस संसार में सुलभ हैं, परन्तु उन गुणों को जानने वाले सुलभ नहीं हैं।

२३१. गुणैकपक्षपातिनां रिपोरपि गुणाः प्रीतिं जनयन्ति।

प्रियदर्शिका पृ० १६ ॥

गुणों के पक्षपाती मनुष्यों के गुण शत्रु में भी प्रेम-भाव उत्पन्न कर देते हैं।

२३२. **सर्वा गुणेषु रज्यन्ते न शरीरेषु। बालरामायण पृ० ६३५ ॥**

सब व्यक्ति गुणों से प्रेम करते हैं, शरीरों से नहीं।

गुण के लिये प्रयत्न करना—

२३३. गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यः न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम् ।

मृच्छकटिक ४.२३ ॥

पुरुष को गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये । गुणों द्वारा कुछ भी अप्राप्य नहीं हैं ।

२३४. गुणेष्वेव हि कर्तव्यः प्रयत्नः पुरुषैः सदा ।
गुणैर्युक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः ॥

मृच्छकटिक ४.२२ ॥

मनुष्य को सदा गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये । गुणयुक्त मनुष्य दरिद्र होते हुये भी धनियों से अच्छा है ।

गुण को प्रमाण मानना—

२३५ गुणाः प्रमाणं न दिशां विभागाः । आश्चर्यचूडामणि १.३ ॥

गुण ही प्रमाण होते हैं, दिशाओं का विभाजन नहीं ।

गुणग्रहणशीलता—

२३६. आदाय शुक्तिषु बलाहकविप्रकीर्णैः ।
रत्नाकरो भवति वारिभिरम्बुराशिः ॥

अनर्घराघव २.६ ॥

मेघों द्वारा बखेरे गये जलों को सीपियों में लेकर ही समुद्र रत्नाकर होता है (रत्नों का आकर) । अच्छे स्थानों से गुणों का ग्रहण करके ही मनुष्य गुणशाली होता है ।

२३७. आधारनिबन्धनो भवत्याधेयधर्मोदयः ।

बालरामायण ४.२३ ॥

आधार के अनुसार ही आधेय में विशेषतायें होती हैं । गुणी मनुष्यों के सम्पर्क से ही गुणों का आधान होता है ।

गुण लक्षित न करना—

२३८. **अचेतनं नाम गुणं न लक्षयेत् ।** **अभिज्ञानशाकुन्तल ६.१३ ॥**
अचेतन वस्तु किसी के गुणों को नहीं पहचानती ।

गुणसम्पन्नता—

२३९. **आकरे सूक्तिरत्नानां यस्मिन् गुणगरीयसाम् ।**
अर्घन्ति बहुसूक्तानि सारं सारलघून्यपि ॥

मत्तविलास श्लोक ४ ॥

गुणों से गौरवयुक्त सूक्तिरूपी रत्नों के आकर में रह कर कम सार वाली अनेक सूक्तियाँ भी सार को प्राप्त कर लेती है । गुणी मनुष्यों के सम्पर्क में रहकर अल्पगुणी व्यक्ति भी गुणों के गौरव से सम्पन्न हो जाता है ।

गुणी में अवगुणों का अभाव—

२४०. **न सन्त्यगुणाः गुणवताम् ।** **आश्चर्यचूडामणि पृ० २४ ॥**
गुणशाली व्यक्तियों में अवगुण नहीं होते ।

सर्वगुणसम्पन्नता का अभाव—

२४१. **एकस्मिन् दुर्लभः गुणविभवः ।** **चारुदत्त पृ० ६३ ॥**
एक ही व्यक्ति में सब गुणों का होना दुर्लभ है ।

२४२. **क्व नु पुनः सर्वत्र सर्वे गुणाः ।** **बालरामायण १.३६ ॥**
सभी गुण सब जगहों पर कहाँ होते हैं ?

२४३. **दुर्लभाः गुणाः विभवाश्च ।** **मृच्छकटिक पृ० ९२ ॥**
सभी गुणों के वैभव का होना दुर्लभ है ।

२४४. **न वसन्त्येकत्र सर्वे गुणाः ।** **महावीरचरित १.३३ ॥**
एक स्थान पर सब गुण नही रहते ।

(५४) गुरुजन—

अयोग्य गुरु का परित्याग—

२४५. **गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।**
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते ॥

बालरामायण ४.३१ ॥

घमण्ड करने वाले, कार्य-अकार्य को न जानने वाले और बुरे मार्ग पर चलने वाले गुरु का परित्याग किया जाता है ।

गुरु का शिष्यों के प्रति समभाव—

२४६. **वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जडे ।**
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्यपहन्ति वा ॥

उत्तररामचरित २.४ ॥

बुद्धिमान और जड़ दोनों प्रकार के शिष्यों को गुरु समान रूप से विद्या देता है । उनके ज्ञान की शक्ति को न वह बढ़ाता है और न कम करता है ।

गुरु के आदेश का पालन करना—

२४७. **न च त्याज्यं गुरोर्वचः ।** **हनूमन्नाटक १४.७२ ॥**

गुरु के वचनों का उल्लंघन नहीं करना चाहिये ।

२४८. **यथोक्तानुष्ठानं गुरुजनानुवृत्तिः । आश्चर्यचूडामणि पृ० ८३ ॥**

गुरुजनों के कहे के अनुसार व्यवहार करना चाहिये ।

गुरुजनों की करुणा—

२४९. **सकरुणा हि गुरवः ।** **उत्तररामचरित पृ० ४५८ ॥**

गुरुजन करुणा से भरे होते हैं ।

गुरुजनों की सेवा तथा उनके प्रति आदर-भाव—

२५०. **अहोगुरुजनसुश्रूषानुरागः।** **नागानन्द पृ० १६ ॥**

गुरुजनों की सेवा के प्रति प्रेम प्रशंसनीय है।

२५१. **गुरुजनसुश्रूषां च वर्जयित्वा अन्यत् सुखं न रोचते।**

नागानन्द पृ० १६६ ॥

गुरुजनों की सेवा को छोड़ कर अन्य सुख अच्छा नहीं लगता।

गुरुजनों के चरित अविचारणीय--

२५२. **वृद्धास्ते न विचारणीयचरिताः।** **उत्तररामचरित ५ ३४ ॥**

गुरुजनों के चरित पर विचार करना उचित नहीं है।

गुरुजनों के प्रति अभिवादन--

२५३. **न युक्तमनभिवाद्य गुरून् गन्तुम्।** **वेणीसंहार पृ० २०६ ॥**

गुरुजनों का अभिवादन किये बिना जाना उचित नहीं है।

२५४. **वन्द्याः खलु गुरवः।** **वेणीसंहार पृ० ३० ॥**

गुरुजन निश्चय से वन्दनीय होते हैं।

२५५. **विश्राव्य नामकर्मणी वन्दनीयाः गुरवः।**

वेणीसंहार पृ० २०६ ॥

अपने नाम और कार्यों को सुना कर गुरुजनों की वन्दना करनी चाहिये।

(५५) गुरु दोष का प्रभाव—

२५६. **एकोऽपि गरीयान् दोषः समग्रमपि गुणग्रामं दूषयति।**

बालरामायण पृ० ३२ ॥

एक भी महान् दोष सम्पूर्ण गुण-समूह को दूषित कर देता है।

(५६) गो-ब्राह्मण को कष्ट देने वाला मारने योग्य है—

२५७. गोब्राह्मणादयस्तेन सुजूष्यन्ते किल प्रजाः ।
अद्य प्रभृति शान्तात्मा निष्प्रभः स भविष्यति ।।

बालचरित ३ १६ ।।

वह गौ-ब्राह्मण आदि प्रजाजनों को उत्पीड़ित करता है । आज से वह निश्चेतन और निष्प्रभ हो जायेगा । गौ-ब्राह्मण आदि को पीडित करने वाला वध्य है ।

(५७) चरित-शील—

२५८. किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम् ।
भवन्ति नितरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ।।

मृच्छकटिक ८ २९, ९ ७ ।।

कुल का कथन करने से क्या लाभ है ? मनुष्य की अच्छाई उसके शील के कारण होती है । अच्छे खेत में भी काँटेदार वृक्ष होते हैं । मनुष्य की अच्छाइयां उसके शील से विदित होती हैं ।

२५९ चारित्रेण विहीन आढ्योऽपि दुर्गतो भवति ।

मृच्छकटिक १.४३ ।।

चरित्रहीन धनी व्यक्ति की भी दुर्दशा होती है ।

२६०. सुचरितचरितं विशुद्धदेहं न हि कमलं मधुपाः परित्यजन्ति ।

मृच्छकटिक ८.३२ ।।

उत्तम चरित्र और पवित्र शरीर वाले कमल को भ्रमर नहीं छोड़ते । उत्तम चरित्र और विशुद्ध आचरण वाले व्यक्ति का साथ गुणीजन नहीं छोड़ते ।

(५८) चाण्डाल—

२६१. न मां चाण्डालस्पर्शदूषितं स्प्रष्टुमर्हति ।

मुद्राराक्षस पृ० २०० ॥

चाण्डाल के स्पर्श से दूषित मेरा आप स्पर्श न करें। चाण्डाल का स्पर्श निन्दनीय माना जाता था।

(५९) चौर्य—

२६२. त्वरैव चौर्यसाक्षित्वम्। **मत्तविलास पृ० १८ ॥**

जल्दी मचाना ही चोरी की साक्षी है।

२६३. रूपाभिगृहीतस्य कुम्भीलकस्य का प्रतिपत्तिः।

उभयाभिसारिका पृ० १२८ ॥

चोरी के धन के साथ पकड़े गये चोर का क्या विश्वास है ?

२६४. लोत्रेण गृहीतस्य कुम्भीलकस्य अस्ति वा प्रतिवचनम् ?

विक्रमोर्वशीय ॥

चोरी के धन के साथ पकड़ा गया चोर क्या प्रत्युत्तर दे सकता है ?

(६०) जाति की श्रेष्ठता—

२६५. जात्यैव पूज्योऽसि नः। **अनर्घराघव ४.३५ ॥**

आप हमारे लिये अपनी जाति (ब्राह्मणत्व) के कारण ही पूजनीय है। समाज में ब्राह्मण को पूज्य माना गया था।

२६६. न खलु वयसा जात्येवायं स्वकार्यसहो भरः।

विक्रमोर्वशीय ३.१८ ॥

वह व्यक्ति आयु के प्रभाव से ही नहीं, अपितु जाति (क्षत्रियत्व) के कारण अपने कार्य के भार को वहन करने में समर्थ है।

(६१) जामाता—

२६७. सर्वस्य जामाता प्रियो भवति । प्रियदर्शिका पृ० ५२ ॥

अपना दामाद सबको प्रिय होता है ।

(४२) ढोंगी—

२६८. **धूर्तैः सत्वहितायकैरपि कृतं साधु व्रतं सौगतम् ।**

तापसवत्सराज ३.३ ॥

किन्ही धूर्त ढोंगियों ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये बौद्ध साधु का व्रत स्वीकार कर लिया है । धूर्त ढोंगी साधुओं का वेश धारण करके सामान्य जनों को ठग कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते है ।

[६३] तप—

२६९. **जाने तपसो वीर्यम् । अभिज्ञाशाकुन्तल ३.२ ॥**

तपस्या की शक्ति को में जानता हूं । तप का प्रभाव अति शक्तिशाली है ।

२७०. **तप एव शान्तिरमङ्गलस्य । आश्चर्यचूडामणि पृ० २७३ ॥**

तपस्या से ही अमंगल की शान्ति होती है ।

२७१. **तपःषड भागमक्षय्यं ददत्यारण्यका हि नः ।**

अभिज्ञानशाकुन्तल २.१३ ॥

वनवासी जन हम राजाओं को तपस्या के छठे भाग को कर रूप में देते हैं, जो कभी नष्ट नहीं होता । राजाओं को तपस्वियों की रक्षा करनी चाहिये ।

(६४) तपस्वी का तेजस्वी भाव—

२७२. **शम प्रधानेषु तपोधनेषु गूढं हि दाहात्मकमस्ति तेजः ।**

अभिज्ञानशाकुन्तल २.७ ॥

शान्त स्वभाव वाले तपस्वियों में जला देने वाला तेज गुप्त रूप से रहता है ।

(६५) तपस्वी का व्यवहार—

२७३. **वृत्तिर्मूलफलादिभिः क्षितितले शय्या जटाधारणं**
वासो वल्कलमीदृशं कृतमिदम् । **तापसवत्सराज ३.११ ॥**

तपस्वी जनों का व्यवहार इस प्रकार है—मूल फल आदि का सेवन, पृथिवी तल पर शयन करना, जटाओं को धारण करना और वल्कल पहनना ।

(६६) तेजस्विता—

२७४, **कः शक्तः सूर्यं हस्तेनाच्छादयितम् ।** **अविमारक पृ० १४ ॥**

सूर्य को हाथ से कौन ढक सकता है ? तेजस्वी के तेज को छिपाया नहीं जा सकता ।

२७५. **कः सन्निहितशार्दूलां गुहां धर्षयितुं शक्तः ?**

दूतघटोत्कच पृ० ११ ॥

सिंह से अधिष्ठित गुहा को कौन धर्षित कर सकता है ? पराक्रमी तेजस्वी व्यक्ति को कोई धर्षित नहीं कर सकता ।

२७६. **कथमौष्ण्यमग्नेश्छाद्यते ?** **आश्चर्यचूडामणि पृ० ६० ॥**

अग्नि की उष्णता कैसे ढकी जा सकती है ? तेजस्वी का तेज छिपाया नहीं जा सकता ।

२७७. **न व्याघ्रं मृगशिशवः प्रधर्षयन्ति ।** **प्रतिमानाटक ५.१८ ॥**

व्याघ्र पर मृगशिशु आक्रमण नहीं करते । तेजस्वी मनुष्य का निर्बल मनुष्य अपमान नहीं कर सकते ।

(६७) दरिद्रता—

२७८. **दरिद्रः किमकृपणं मन्त्रयति ?** मृच्छकटिक पृ० १४० ॥

निर्धन व्यक्ति उदारता से नहीं कह सकता ।

२७९. **दारिद्र्यं नाम पुरुषस्य सोच्छ्वासं मरणम् ।**

चारुदत्त पृ० १२ ॥

दरिद्रता तो मनुष्य के लिये श्वास लेते हुये भी मरण ही है ।

२८०. **दारिद्र्याद्धियमेति ह्रीपरिगतो विभ्रश्यते तेजसा**
निस्तेजाः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते ।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ॥

मृच्छकटिक १.१४ ॥

दरिद्रता से मनुष्य लज्जित होता है, लज्जित मनुष्य का तेज नष्ट हो जाता है । तेज से रहित मनुष्य तिरस्कृत होता है और तिरस्कार से वैराग्य होता है । वैराग्य से शोक होता है और शोक से पीडित व्यक्ति को बुद्धि छोड़ देती है । तदन्नतर बुद्धि से हीन व्यक्ति का विनाश होता है । अहो ! निर्धनता सभी आपत्तियों का निवास है ।

२८१. **दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम् ।**
अपक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥

मृच्छकटिक १.११ ॥

दरिद्रता और मरण इन दोनों में से मुझको मरण अच्छा लगता है, दरिद्रता नहीं । मरण के बाद कोई क्लेश नहीं रहता । परन्तु दरिद्रता अनन्त दुःख देने वाली है । दरिद्र होने से मरण अच्छा है ।

२८२. **धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एव तावत् ।**

यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात् कोपप्रसादाः विफलीभवन्ति ।।

मृच्छकटिक ५.४० ।।

इस संसार में धनहीन मनुष्य के लिये जीवित रहने से लाभ ही क्या है ? वह किसी का प्रतीकार नही कर सकता और उसके क्रोध तथा कृपा दोनों विफल हैं ।

२८३. धिगस्तु खलु दारिद्र्यमनिर्वेदितपौरुषम् ।

मृच्छकटिक ३.१६ ।।

पुरुषार्थ नष्ट करने वाली दरिद्रता को धिक्कार है।

२८४. नष्टधनाश्रयस्य सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति ।

मृच्छकटिक १.१३ ।।

जिसका धन नष्ट हो जाता है, उसके प्रति लोगों की मित्रता भी कम हो जाती है ।

२८५. निवासश्चिन्तायाः परपरिभवो वैरमपरं
जुगुप्सा मित्राणां स्वजनजनविद्वेषकरणम् ।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात् परिभवो
हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च ।।

मृच्छकटिक १.१५ ।।

धन न रहने से चिन्ता होती है, दूसरे तिरस्कार करते हैं, द्वेष करते हैं, मित्र घृणा करते हैं, सम्बन्धी द्वेष करने लगते हैं, वन जाने का विचार होता है, पत्नी तिरस्कार करती है और हृदय में स्थित शोकरूपी अग्नि निरन्तर जलाती तथा सन्तप्त करती है ।

२८६. पक्ष विकलश्च पक्षी शुष्कश्च तरुः सरश्च जलहीनम् ।
सर्पश्चोद्धृतदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रस्य ।। मृच्छकटिक ५.४१ ।।

पंख से रहित पक्षी, सूखा वृक्ष, जल से रहित जलाशय, और उखाड़ ली गई

दाढों वाला साँप, ये सब धनहीन पुरुष के समान हैं।

२८७. यत्नेन सेवितव्यः पुरुषः कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि।

मृच्छकटिक ८ ३ ॥

दरिद्र, परन्तु कुल और शील से समन्वित पुरुष की सेवा करनी चाहिये।

२८८. शंकनीया हि दोषेषु निष्प्रतापा दरिद्रता।

चारुदत्त ३.१५ ॥

कोई दुर्घटना होने पर तेजोविहीन दरिद्रता पर सन्देह किया जाता है।

२८९. शंकनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता।

मृच्छकटिक ३.२४, ५.४३ ॥

इस संसार में तेजोविहीन दरिद्रता ही सन्देहास्पद है।

२९०. शून्यैर्गृहैः खलु समा पुरुषाः दरिद्राः। मृच्छकटिक ५.४२ ॥

दरिद्र मनुष्य सूने घरों के समान होते हैं।

२९१. सर्वं शून्यं दरिद्रस्य। मृच्छकटिक १ ८ ॥

दरिद्र के लिये सब कुछ सूना ही है।

२९२. सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति ॥ मृच्छकटिक १.१० ॥

जो मनुष्य समृद्धि का सुख भोगते हुये दरिद्र हो जाता है, वह शरीर को धारण करके जीवित होते हुये भी मृत ही है।

(६८) दान —

२९३. दानं नाम सर्वसामान्यं वशीकरणं लोकस्य।

धूर्तविटसंवाद पृ० ९० ॥

दान से सभी लोग वश में हो जाते हैं।

२६४. **न तथा रत्नमासाद्य सुजनः परितुष्यति ।**
यथा तद्तद्गताकांक्षे पात्रे दत्वा प्रसीदति ॥

अविमारक ४.१४ ॥

सज्जन मनुष्य रत्नों को प्राप्त करके भी उतना प्रसन्न नहीं होता, जितना कि विशिष्ट वस्तु की इच्छा करने वाले योग्य पात्र को दान देकर प्रसन्न होता है ।

२६५. **नादक्षिणं दानमानमन्ति ।** **चण्डकौशिक पृ० ७१ ॥**

दक्षिणा के विना दान सम्पन्न नहीं होता ।

२६६. **हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति ।** **कर्णभार १.२२ ॥**

यज्ञ की आहुति तथा दिया गया दान नष्ट नहीं होते, स्थिर रहते हैं ।

(६९) दाम्पत्य—

२६७. **अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यद्**
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत् प्रेमसारे स्थितं
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्रार्थ्यते ॥

उत्तररामचरित १.३९ ॥

सुख-दुःख की सभी अवस्थाओं में समान रहता है, समय व्यतीत होने के साथ साथ संकोच आदि आवरणों के दूर हो जाने से जिसमें प्रगाढ प्रेम रहता है और जिसमें पति-पत्नी यह दो का भाव नहीं रहता, वह दाम्पत्य कल्याण-कारी होता है । सौभाग्यशाली उसकी प्रार्थना करते हैं ।

२६८. **प्रेयो मित्रं बन्धुता वा समग्रा सर्वे कामा शेवधिर्जीवितं वा ।**
स्त्रीणां भर्ता धर्मदाराश्च पुंसामित्यन्योन्यं वत्सयोर्ज्ञातमस्तु ॥

मालतीमाधव ६.१८ ॥

पति के लिये पत्नी और पत्नी के लिये पति परस्पर प्रणयी है, मित्र हैं, सभी प्रकार के बन्धु हैं, सभी कामनायें हैं, निधि हैं और जीवन हैं।

(७०) दासत्व का कष्ट—

२९९. ईदृशो दासभावो यत्सत्यं कमपि न प्रत्यायति ।

मृच्छकटिक पृ० ४०६ ॥

दासत्व इतना निन्दनीय है कि सत्य कहते हुये भी कोई विश्वास नहीं करता ।

(७१) दीर्घसूत्रता का दोष—

३००. दीर्घसूत्रता नाम कार्यान्तरमुत्पादयति ।

पद्मप्राभृतक पृ० ५३ ॥

दीर्घसूत्री (कार्य में विलम्ब करने वाला) होने से कार्य के पश्चात् कार्य उत्पन्न होते जाते हैं।

३०१. विजिगीषोरदीर्घसूत्रता हि कार्यसिद्धेरवश्यभावः ।

अनर्घराघव पृ० २७८ ॥

विजिगीषु के कार्यों की सफलता के लिये आवश्यक है कि वह दीर्घसूत्री न हो।

[७२] दुःख पर दुःख आना—

३०२. अपरो गण्डस्योपरि पिण्डिकोद्भेदः । बालरामायण पृ० १८ ॥

एक फोड़े पर दूसरी फुड़ियायें निकल आई हैं। एक दुःख के समाप्त होते न होते अन्य दुःख आ पड़ते हैं।

३०३. अपरो गण्डस्योपरि स्फटिकोद्‌भेदः ।
विद्धसालभञ्जिका पृ० १० ॥

एक फोड़े पर दूसरी फुड़ियायें निकल आई हैं ।

३०४. अयं ते क्षते क्षारावसेकः । **तापसवत्सराज पृ० ४६ ॥**

यह चोट पर नमक गिर गया है । एक दुःख पर और प्रबल दुःख आ पड़ा है ।

३०५. अलमिदानीं व्रणे प्रहर्तुम् । **प्रतिमानाटक पृ० ११६ ॥**

अब घाव पर प्रहार मत करो ।

३०६. क्षते क्षारमिवासह्यम् । **उत्तररामचरित ४.७ ॥**

चोट पर नमक लगने के समान दुःख पर दुःख आ जाना असह्य होता है ।

३०७. क्षते क्षारावसेकः । **बालरामायण पृ० ३६२ ॥**

चोट पर नमक का सेक हुआ है ।

३०८. गण्डस्योपरि पिण्डकः संवृतः । अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० १८५ ॥

फोड़े के ऊपर फुड़ियां हो गई हैं ।

३०९. रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः । **अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४०४ ॥**

एक विपत्ति होने पर अनेक अनर्थ आ पड़ते हैं ।

[७३] दुःखातिशय—

३१०. अतिदुःखो निर्दुःखः । **अनर्घराघव पृ० २८३ ॥**

मनुष्य अति दुःखी होने पर दुःख रहित की तरह हो जाता है ।

३११. दुःखं दुःखैस्तिरोधीयते । **चण्डकौशिक पृ० ११६ ॥**

दुःखों से ही दुःख तिरोहित होता है ।

३१२. न शक्नोमि उद्वर्तमानमूलबन्धनं हृदयं पर्यवस्थापयितुम् ।

उत्तररामचरित पृ० २०० ।।

दुःख से डावाँडोल हृदय को संभाला नहीं जा सकता ।

३१३. पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतीक्रिया ।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते ।।

उत्तररामचरित ३.२६ ।।

बाढ़ के जल से जलाशय के भर जाने पर जल को बाहर कर देना ही उसका प्रतीकार है । बहुत अधिक शोक और क्षोभ के होने पर हृदय को प्रलापों से ही शान्त किया जा सकता है । अत्यधिक शोक होने पर रुदन से ही जीवन की रक्षा होती है ।

३१४. प्रत्यक्ष हतबन्धूनामेतत्परिभवाग्निना ।
हृदये दह्यतेऽत्यर्थं कुतो दुःखं कुतो व्यथा ।।

वेणीसंहार ४.११ ।।

सामने ही बन्धु मारे गये हैं, इस अपमान से हृदय बहुत अधिक जल रहा है । इसमें शोक और पीड़ा कहाँ ?

३१५. शोकप्रतीकारेणापि शोको वर्धते । कुन्दमाला पृ० ७२ ।।

शोक का प्रतीकार करने पर भी शोक बढ़ता है ।

३१६. सन्तानवाहीन्यपि मानुषाणां दुःखानि सम्बन्धिवियोगजानि ।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि स्रोतः सहस्रै रिव संप्लवन्ते ।।

उत्तररामचरित ४.८ ।।

निरन्तर विद्यमान रहने वाले सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के दुःख किसी प्रिय जन के दिखाई देने पर दुःसह हो जाते है और वे हजारों स्रोतों में बहने लगते हैं ।

(७४) दुःस्वप्न-उत्पात का शमन—

३१७. शान्तिः स्वस्त्ययनाद् दानाद् विप्राणां स्वस्तिवाचनात् ।
दुःस्वप्नोत्पातशमनं सतां चैवानुकीर्तनम् ।।

चण्डकौशिक १.२४ ।।

दुःस्वप्नजन्य उत्पातों का शमन करने के लिये शान्ति-पाठ करना चाहिये, स्वस्तिवाचन मन्त्र पढ़ने चाहिये, विप्रों को दान तथा बायना देना चाहिये और सज्जनों की प्रशंसा करनी चाहिये ।

(७५) दुर्गुण-वृद्धि—

३१८. अरिष्टमधिरूढा कारवल्ली । विद्धसालभञ्जिका पृ० १०० ।।

करेले की बेल नीम पर चढ़ गई । एक दुष्ट की दुष्टता दूसरे दुष्ट के साथ मिल कर अधिक प्रबल हो जाती है ।

(७६) दुर्वचन—

३१९. ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः ।
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निष्कृतिः ।।

उत्तररामचरित ५.२९ ।।

उन्मत्त और घमण्डी की वाणी को ऋषि लोग राक्षसी कहते हैं । वह सभी वैरों का कारण है और लोक को अपमानित करने वाली है ।

(७७) दुष्टता-नीच-पापी—

३२०. एकेनाप्यपराधकारणेन तीक्ष्णं कुलोत्सादनकरं दण्डमर्हति,

किं पुनरेतेषां सन्निपातेन। **धूर्तविटसंवाद पृ० ८३ ॥**

एक ही अपराध के कारण वह तीक्ष्ण और कुल के विनाशक दण्ड के योग्य है, इतने अपराधों के होने पर तो कहना ही क्या है।

दुष्ट की दुष्टता से सज्जन को कष्ट—

३२१. **खलः करोति दुर्वृत्तं नूनं पतति साधुषु।**
दशाननोऽहरत्सीतां बन्धनं च महोदधेः ॥

हनूमन्नाटक १३.१३ ॥

दुष्ट दुराचरण करता है और उसका परिणाम सज्जनों को भोगना पड़ता है। रावण ने सीता का अपहरण किया और समुद्र को बाँधा गया।

दुष्ट की दुश्चेष्टाओं को जान न सकना—

३२२. **परवञ्चनापटीयसां पापीयसामशक्यावबोधानि खलु दुश्चेष्टितानि।** **सुभद्राधनञ्जय पृ० १५४-१५५ ॥**

दूसरों को ठगने में चतुर पापियों की बुरी चेष्टाओं को जानना असम्भव है।

दुष्ट के कथन की अग्राह्यता—

३२३ **दुष्टात्मा परगुणमत्सरी मनुष्यो परमिह हन्तुकामबुद्धिः।**
किं यो यद् वदति मृषैव जातिदोषात् तदग्राह्यं भवति न तद् विचारणीयम् ॥ **मृच्छकटिक ९ २७ ॥**

दुष्ट अन्तःकरण वाला, दूसरों के गुणों से ईर्ष्या करने वाला, वासना से अन्धा और दूसरों को मारने की इच्छा करने वाला मनुष्य जाति के दोष से मिथ्या ही बोलता है। वह न तो ग्रहण करने के योग्य है और न विचारने योग्य है।

दुष्टता दुश्चिकित्स्य—

३२४. **कुम्भदासीकृतरुदितं दुश्चिकित्स्यम्। धूर्तविटसंवाद पृ० ६७ ॥**

धूर्त दासी के रोने की चिकित्सा कठिन है। धूर्त लोग स्वयं दुष्टता करके रोने और हल्ला मचाने लगते हैं।

दुष्ट द्वारा अभिलषित का न पाना -

३२५. **असम्भृतपुण्यसंचयानामतिप्रतीपाः पदार्थशक्तयः।**

तपतीसंवरण पृ० ११५ ॥

पुण्यों का संचय न करने वाले दुष्टों के लिये पदार्थों की शक्तियाँ उलटा प्रभाव करने वाली होती हैं।

३२६. **न खल्वविघ्नमभिलषि तमधन्यैः प्राप्यते।**

प्रियदर्शिका पृ० ३८ ॥

दुष्ट मनुष्य को अभिलषित वस्तु पाने में विघ्न होते ही हैं।

३२७. **निर्मूला हि पापकानां प्रलापाः भवन्ति।**

सुभद्राधनञ्जय पृ० ८३ ॥

पापियों की बकवास की कोई मूल नहीं होती।

दुष्ट द्वारा वंचना—

३२८. **दाक्षिण्यमृद्वी जनता शठानां वशवर्तिनी।**

आश्चर्यचूडामणि २.१८ ॥

भोली भाली जनता धूर्तों के वश में आ जाती है।

दुष्ट पुरुष—

३२९. **यस्यामित्रा न बहवो यस्मान्नोद्विजते मनः।**
यं समेत्य न तिष्ठन्ति स पार्थ पुरुषाधमः ॥

पादताडितक श्लोक ४९ ॥

अधम पुरुष के अनेक शत्रु होते हैं, उससे मन घबराता है और उसके पास कोई नहीं ठहरता।

३३०. येऽभिभवन्ति साधुं ते पापास्ते च चाण्डालाः ।

मृच्छकटिक १०.२२ ॥

जो सज्जनों का तिरस्कार करते हैं, वे ही पापी हैं और चाण्डाल हैं।

दुष्ट से मित्रता का निषेध—

३३१. नीचैः सह मैत्री न कर्तव्या । हनूमन्नाटक पृ० १७५ ॥

नीच पुरुषों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये ।

दुष्ट-सेवा की निष्फलता—

३३२. असत्पुरुष सेवा ..निष्फलतां गता । बालचरित १.१५ ॥

दुष्ट मनुष्य की सेवा व्यर्थ जाती है ।

दुष्टों के स्वभावज दोष—

३३३. असतां सहजो भावश्छन्नो केनापि हेतुना ।
संस्कार इव बीजानां फलेन सह जायते ॥

आश्चर्यचूडामणि ३.४ ॥

दुष्ट मनुष्यों का स्वाभाविक दुष्टता का भाव यदि किसी कारण छिपा भी रहता है तो वह उसके फलीभूत होने के साथ प्रकट हो जाता है ।

३३४. नीचैर्भावः प्रियवचनताऽक्षमा नित्यप्रमादश्च ।
शाठ्यादुत्पद्यन्ते केनैतद् दूष्यते लोके ॥

धूर्तविटसंवाद श्लोक ५७ ॥

नीच कोटि की भावनायें, प्रिय बोलना, सहन न करना, सदा प्रमाद करना, ये सब धूर्तता से उत्पन्न होते हैं और लोक को दूषित करते हैं ।

(७८) दुष्ट मन्त्री—

३३५. ईदृशे व्यवहाराग्नौ मन्त्रिभिः परिपातिता ।

स्थाने खलु महीपालाः गच्छन्ति कृपणां दशाम् ॥

मृच्छकटिक ६.४० ॥

दुष्ट मन्त्रियों द्वारा अन्यायरूपी अग्नि में गिराये गये राजा हीन दशा को प्राप्त होते हैं।

३३६. ईदृशैः श्वेतकाकीयैः राज्ञः शासनदूषकैः ।
अपापानां सहस्राणि हन्यन्ते च हतानि च ॥

मृच्छकटिक ६.४२ ॥

श्वेत कौओं के समान ढोंगी और राजा के शासन को दूषित करने वाले दुष्ट मन्त्री हजारों निर्दोष व्यक्तियों को मरवाते हैं और मारते हैं।

(७९) दूत की अवध्यता—

३३७. दूतवधः वचनीयः । अभिषेकनाटक पृ० ६१ ॥

दूत का वध निन्दनीय है।

३३८. सर्वापराधेष्ववध्याः खलु दूताः । अभिषेकनाटक पृ० ५७ ॥

सभी अपराधों के करने पर भी दूतों का वध नहीं किया जा सकता।

(८०) दूती—

३३९. स्थाने प्राणाः कामिनां दूत्यधीनाः ।

मालविकाग्निमित्र ३.१४ ॥

विलासी जनों के प्राण दूतियों के आधीन रहते हैं।

(८१) दृढता—

३४०. ननु प्रवातेऽपि निष्कम्पाः गिरयः । अभिज्ञशाकुन्तल पृ० ४०८ ।।

आंधी में भी पर्वत काँपते नहीं । दृढ स्वभाव वाले विपत्तियों में घबराते नही ।

(८२) देश काल—

३४१. देशकालौ हि विद्येते क्षमायास्तेजसोऽपि च ।

वीणावासवदत्त २.१८ ।।

क्षमा और दण्ड का प्रयोग देश और काल के अनुसार होना चाहिये ।

(८३) द्यूत (जुआ)—

३४२. कत्ताशब्दः निर्नाणकस्य हरति हृदयं मनुष्यस्य ।

मृच्छकटिक २.५ ।।

पासों का कत्ता शब्द धनहीन जुआरियों के हृदय का अपहरण करता है ।

३४३. द्यूतं नाम पुरुषस्यासिंहासनं राज्यम् ।

मृच्छकटिक पृ० ४८० ।।

जुआरी मनुष्य के लिये जुआ विना सिंहासन का राज्य है ।

३४४. न गणयति पराभवं कुतश्चिद्धरति ददाति च नित्यजातम् ।
नृपतिरिव निकाममायदर्शी विभववता समुपास्यते जनेन ।।

मृच्छकटिक २.७ ।।

जुआ कभी भी पराजय को नहीं गिनता, कही से भी धन को लाता है और प्रतिदिन धन को देता है । यह राजा के समान प्रचुर आमदनी को दिखाने वाला है । समृद्धिशाली ही उसका सेवन करते हैं ।

द्यूत में आह्वान से पीछे न हटना—

३४५. **आहूतो न निवर्तेय द्यूतादपि रणादपि । बालभारत २.१०२ ॥**

आह्वान किये जाने पर न तो जुये से और न युद्ध से पीछे हटे ।

द्यूत से हानि—

३४६. **अक्षाश्च नाम न सर्वकालसुमुखा भवन्ति ॥**

धूर्तविटसंवाद पृ० ६८ ॥

जुये के पासे सभी समयों में अनुकूल नहीं रहते ।

३४७. **एकाक्षरमात्रेण धनदस्यापि विभवहरणसमर्थो द्यूतः ।**

उभयाभिसारिका पृ० १३८ ॥

जुआ एक अक्षर मात्र से कुवेर का धन हरण करने में भी समर्थ हैं ।

३४८. **द्रव्यं लब्धं द्यूतेनैव दारामित्रं द्यूतेनैव ।**
दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव सर्वं नष्टं द्यूतेनैव ॥ मृच्छकटिक २.८ ॥

इस धन को जुये से ही पाया । पत्नी और मित्र को जुये से ही पाया । जुये से ही दान किया और भोग किया । परन्तु सब कुछ जुये से ही नष्ट हो गया । जुआ अन्त में विनाश का कारण है ।

३४९. **श्रीनिर्वासनडिण्डिमः क्वणरवः सद्म स्थिरं छद्मनां**
सत्योत्सारणघोषणा तत्र इतो लज्जानिवापाञ्जलिः ।
द्वारं ह्यार्ययशः पराभवपदं गोष्ठी गरिष्ठापदां
द्यूतं दुर्लभवारिधिर्निपततां कस्तत्र हस्तग्रहः ॥

बालभारत २.६३ ॥

यह जुआ लक्ष्मी को निर्वासित करने वाला ढोल का शब्द है, कपटों का स्थिर घर है । सत्य को बाहर निकाल देने की घोषणा है । लज्जा की मृत्यु की अन्तिम अंजलि है । अपकीर्ति का द्वार है । तिरस्कार का स्थान

है। महान् आपत्तियों की गोष्ठी है। दुर्नीतिरूपी समुद्र है। इसमें गिरने वालों का हाथ कौन पकड़ सकता है ?

३५० सुमेरुशिखरपतनसन्निभं द्यूतम् । **मृच्छकटिक पृ० ८६ ॥**

जुआ सुमेरु पर्वत के शिखर से गिरने के समान है।

(८४) धन के अनधिकारी—

३५१. भार्या दासश्च पुत्रश्च निर्धना सकला अपि ।
यं ते समभिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥

विद्धसालभञ्जिका ४.२१ ॥

पत्नी, दास और पुत्र, इनका अपना कोई धन नहीं होता। इनके धन का स्वामी वही होता है, जिसके पास वे रहते हैं।

(८५) धर्म—

३५२. अपश्चात्तापकरः खलु सञ्चितधर्माणां मृत्युः ।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ११५ ॥

धर्म का संचय करने वालों की मृत्यु पश्चात्ताप के योग्य नहीं होती।

३५३. धर्मो हि पुरुषैः यत्नेन पाल्यः । **कर्णभार १.१७ ॥**

पुरुषों को प्रयत्न से धर्म का पालन करना चाहिये।

३५४. सर्वार्थसाधनः धर्मः । **आश्चर्यचूडामणि पृ० १५७ ॥**

ध सभी प्रयोजन सिद्ध होते हैं।

(८६) धैर्य—

३५५. अयुक्तमधृतित्वं पुरुषाणाम् । अविमारक पृ० ३२ ॥

पुरुषों के लिये धैर्य छोड़ना उचित नहीं।

३५६. चलन्ति गिरयः कामं युगान्तपवनाहताः ।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मनः ॥

चण्डकौशिक ४ ३५ ॥

प्रलयकालीन पवन से आहत होकर पर्वत चाहे विचलित हो जावें, परन्तु धैर्यशाली पुरुषों का मन कठिनाइयों के आने पर भी विचलित नहीं होता ।

३५७. धैर्यं हि महतां मनः । अनर्घराघव ५.१५ ॥

महान् व्यक्तियों मन धैर्यशाली होता है ।

(८७) न-द्रष्टव्य पदार्थ—

३५८. इन्द्रः प्रवाह्यमाणो गोप्रसवः संक्रमश्च ताराणाम् ।
सुपुरुषप्राणविपत्तिश्चत्वार इमे न द्रष्टव्याः ॥

मृच्छकटिक १०.७ ॥

प्रवाहित की जाती हुई इन्द्र की मूर्ति, बछड़ा जनती हुई गाय, तारों का संक्रमण और उत्तम पुरुषों के प्राणों पर विपत्ति, इन चारों को नहीं देखना चाहिये ।

(८८) नव वस्तु की ग्राह्यता—

३५९. पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।

मालविकाग्निमित्र १.२ ॥

कोई वस्तु पुरानी होने से ही ग्राह्य नहीं हो जाती और नई होने से ही निन्द-नीय नही होती ।

(८९) नारी—

नारी का अनादर करना अनुचित है—

३६०. अग्राह्याः मूर्धजेष्वेताः स्त्रियो गुणसमन्विताः ।

मृच्छकटिक ८.२१ ॥

गुणशाली महिलाओं के केश पकड़ कर उनको अपमानित करना उचित नही ।

३६१. सर्वथा व्यवहर्तव्यं कुतो ह्यवचनीयता ।
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ॥

उत्तररामचरित १.५ ॥

स्त्रियों के प्रति सब प्रकार से यथोचित व्यवहार करना चाहिये । इसमें कोई निन्दा की बात नहीं है । दुष्ट मनुष्य स्त्रियों के विषय में तथा सज्जनों की वाणी के विषय में सदा दोष निकाला करते हैं ।

नारी का प्रतिकूल स्वभाव—

३६२. पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी । मुद्राराक्षस २.७ ॥

नारियों की बुद्धि पुरुषों के गुणों को नहीं जान सकती ।

३६३. वामशीला हि नार्यः । धूर्तविटसंवाद श्लोक ४७ ॥

नारियाँ उल्टे स्वभाव वाली होती हैं ।

नारी का भोला स्वभाव—

३६४. अहो मुग्धत्वमबलानाम् । वेणीसंहार पृ० ७८ ॥

नारियों का भोलापन आश्चर्यजनक है।

नारी का शंकालु होना—

३६५. पुरुषविशेषपरिशङ्कोत्कर्षिण्य एव पुरन्ध्रयो भवन्ति।

बालरामायण पृ० २५० ॥

नारियों का स्वभाव है कि पुरुष विशेष के प्रति शंका करने वाली होती हैं।

नारी की अविश्वसनीयता—

३६६. अपण्डितास्ते पुरुषा मताः मे ये स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति।
श्रियो हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुजङ्गकन्यापरिसर्पणानि॥

मृच्छकटिक ४.१२ ॥

वे पुरुष मूर्ख हैं, जो स्त्रियों तथा लक्ष्मी में विश्वास करते हैं। लक्ष्मी और स्त्रियां सर्पिणियों के समान कुटिल गति वाली होती हैं।

३६७ अविश्वसनीयः खलु स्त्रीभावः। आश्चर्यचूडामणि पृ० २३५ ॥

स्त्रियों पर विश्वास नहीं करना चाहिये।

३६८. न समाधिः स्त्रीषु लोकशः। आश्चर्यचूडामणि पृ० १३ ॥

लोक में स्त्रियों पर कोई विश्वास नहीं करता।

३५९. स्त्रीषु न रागः कार्यः रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति।

मृच्छकटिक ४.१३ ॥

स्त्रियों के प्रति अनुराग नहीं करना चाहिये, क्योंकि वे अनुरक्त पुरुष का तिरस्कार करती हैं।

नारी की कोमलता—

३७०. कुसुमसधर्माणो हि स्त्रियः सुकुमारोपक्रमाः।

मालतीमाधव पृ० ३०८ ॥

स्त्रियाँ पुष्पों के समान होती हैं। इनसे अति कोमल व्यवहार करना चाहिये।

३७१. ज्ञातिकुलप्रवृत्तिः अवश्यमदुःखितमपि स्त्रीजनं रोदयति ।

तापसवत्सराज पृ० २९ ॥

अपने पितृकुल के सम्बन्धियों का का वृत्तान्त सुखी स्त्री को भी रुला देता है ।

३७२. पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति ।

उत्तररामचरित ४.१२ ॥

स्त्रियों का मन पुष्पों के समान कोमल होता है ।

३७३. स्त्रीस्वभावस्तु कातरः । **स्वप्नवासवदत्त ४.८ ॥**

स्त्रियों का स्वभाव कातर (विह्वल) होता है ।

नारी की चंचलता–

३७४. समुद्रवीचीव चलस्वभावाः **मृच्छकटिक ४.१५ ॥**

नारियाँ समुद्र की लहरों के समान चंचल स्वभाव की होती हैं ।

नारी की दुष्टता–

३७५. निविष्टे दुष्कुले साधुः स्त्रीदोषेण दह्यते । **पंचरात्र १.१४ ॥**

बुरे कुल में प्रविष्ट होने पर मनुष्य स्त्री के दोष से दुःख पाता है ।

३७६. हताः स्त्रियः पापे कर्मणि पण्डितानतिशेरते ।

आश्चर्यचूडामणि पृ० ८५ ॥

दुष्ट स्त्रियाँ पापों में पण्डितों (चालाकों) से भी अधिक बढ़ जाती हैं ।

नारी की देखभाल में कष्ट–

३७७. स्त्रीषु कष्टोऽधिकारः । **विक्रमोर्वशीय ३.१ ॥**

स्त्रियों की देखभाल अति कष्टप्रद है ।

नारी की मदमतता–

३७८. कुलद्वयं हन्ति मदेन नारी । **अविमारक १.३ ॥**

मद से मत्त नारी पितृकुल और पतिकुल दोनों का विनाश करती है।

३७९. **गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः।**

मृच्छकटिक ५.१६ ॥

प्रेमी के प्रति अभिमुख स्त्रियाँ सरदी-गरमी की परवाह नहीं करतीं।

३८०. **न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति।**

मृच्छकटिक ५ ३१ ॥

प्रेमी के प्रति जाती हुई स्त्री को रोका नही जा सकता।

३८१ **बहुशो मदः किल स्त्रीजनस्य मण्डनम्।**

मालविकाग्निमित्र पृ० ६३ ॥

बहुत अधिक मद तो स्त्रियों के लिये आभूषण है।

नारी की लोलुपता–

३८२. **स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत् त्यजन्ति।**
मृच्छकटिक ४.१५ ॥

धन का अपहरण करके स्त्रियाँ धनरहित पुरुष को निचोड़ी गई लाख के समान छोड़ देती है।

नारी की सखियों के प्रति चित्तानुवर्तिता–

३८३. **सखीजनचित्तानुवर्त्यबलाजनो भवति।**

मृच्छकटिक पृ० १४२ ॥

नारियों का मन सखियों के मन का अनुवर्ती होता है।

नारी की सुखाभिलाषा–

३८४. **सुखाभिलाषी स्त्रीभावः।** **अश्वचर्यचूडामणि ७.१२ ॥**

नारी स्वभाव से ही सुख की अभिलाषा करने वाली होती है।

नारी की स्वभावगत धूर्तता–

३८५. **इदं प्रत्युत्पन्नमतित्वं स्त्रैणमिति**

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३६३ ॥

स्त्रियाँ प्रत्युत्पन्न मति होती हैं ।

३८६. **एवमादिभिरात्मकार्यनिर्वर्तिनीनामनृतवाङ्मधुभिराकृष्यन्ते विषयिणः ।** **अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३६४ ।**

इस प्रकार अपना कार्य सिद्ध करने वाली स्त्रियाँ असत्य तथा मीठी वाणियों से विलासी जनों को आकृष्ट कर लेती है ।

३८७. **स्त्रियो हि नाम खल्वेताः निसर्गादेव पण्डिताः ।**

मृच्छकटिक ४,१९ ॥

स्त्रियाँ तो स्वभाव से ही पण्डित (चालाक) होती हैं ।

३८८. **स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वम् ।** **अभिज्ञानशाकुन्तल ५.२२ ॥**

स्त्रियाँ विना सीखे ही स्वभाव से पटु (चालाक) होती हैं ।

नारी के लिये अनुकूल होना आभूषण—

३८९. **दाक्षिण्यं विरूपामपि स्त्रियं भूषयति ।**

धूर्तविटसंवाद पृ० १०५ ॥

प्रिय के प्रति अनुकूल होना कुरूप स्त्रियों को भी विभूषित कर देता है ।

नारी के स्वाभाविक गुण—

३९०. **सुवाक् सुनेत्रा निभृता कृतज्ञा भावान्विता नापि च दीर्घकाया ।**
अलोलुपा छन्दकरी च नित्यं दाक्षिण्ययुक्ता भवतीह नारी ॥

धूर्तविटसंवाद श्लोक ५६ ॥

नारी के स्वभाविक गुण हैं—मधुर बोलना, सुन्दर नेत्र, चुप रहना, कृतज्ञ होना, भावों से भरा होना, लम्बे समय तक क्रोध न करना, लालच न करना, सदा आज्ञापालन करना और अनुकूल व्यवहार करना ।

३६१. सौन्दर्यं सुकुमारता मधुरता कान्तिर्मनोहारिता
श्रीमता महिमेति सर्गविभवान् निःशेषनारीगुणान् ॥
सुभद्राधनञ्जय १.१५ ॥

नारी के स्वभाविक छः गुण हैं—सौन्दर्य, सुकुमारता, मधुरता, कान्ति, मनोहारिता, श्रीमता और महिमा ।

३६२. सौभाग्यश्रीविनयमधुरालापचातुर्यलज्जा–
लीलादीनां परमवनिताभूषणानां गुणानाम् ॥
विद्धसालभञ्जिका १.१५ ॥

नारी के स्वभाविक छः गुण—सौभाग्य, श्री, विनय, मधुर वार्ता, चतुरता, लज्जा, और विलास ।

नारी को वश में रखना--

३६३. काम्यमानं कामयन्ते स्त्रियः । पादताडितक पृ० २२४ ॥

स्त्रियाँ प्रेम करने वाले को चाहती हैं ।

३६४. रक्तैव हि रन्तव्या विरक्तभावा तु हातव्या ।
मृच्छकटिक ४.१३ ॥

जो स्त्री अनुरक्त हो, उससे ही प्रेम करना चाहिये । विरक्त को छोड़ देना चाहिये ।

३६५. समाधी रक्षति स्त्रीजनं न बाणाः ।
आश्चर्यचूडामणि पृ० १०१ ॥

स्त्री की रक्षा बाण नहीं, अपितु विश्वासपूर्वक मिलन करता है ।

३६६. हृदये गृह्यते नारी । मृच्छकटिक १.५० ॥

नारी को हृदय में वश में किया जाता है ।

नारी-दर्शन में दोषाभाव--

३६७. निर्दोषदृश्या हि भवन्ति नार्यो यज्ञे विवाहे व्यसने वने च ।

प्रतिमानाटक १.२६ ॥

यज्ञ, विवाह, आपत्ति और वन इन अवसरों पर नारी को देखने में दोष नहीं है ।

नारी द्वारा पुरुष का अनुनय करने में अनौचित्य--

३६८. स्त्रिया हि नाम पुरुषोऽनुनेयो ननु शौण्डीर्यम् ।

पद्मप्राभृतक पृ० ४७ ॥

स्त्रियां पुरुष को मनावें, इसमें कोई पराक्रम नहीं है ।

नारी द्वारा मन के भावों को छिपा न सकना--

३६९. आकारसंवरणं महात्मानोऽपि न शक्नुवन्ति कर्तुम्, किं पुनरकठिनहृदयाः स्वल्पावगताः स्त्रियः ।

धूर्तविटसंवाद पृ० ६५-६६ ॥

आकार द्वारा मन के भावों को तो महान् पुरुष भी नहीं छिपा पाते, पुनः कोमल हृदय वाली तथा स्वल्प ज्ञान वाली स्त्रियों का तो कहना ही क्या है ।

नारी द्वारा वियोग की असहनशीलता--

४००. इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य
दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि ॥

अभिज्ञानशाकुन्तल ४.३ ॥

नारियों के लिये प्रिय के प्रवास से उत्पन्न हुआ दुःख अति दुःसह होता है ।

४०१. वियुक्ताः कान्तेन स्त्रियो न राजन्ति ।

मृच्छकटिक ५.२५ ॥

प्रिय से वियुक्त स्त्रियाँ प्रसन्न नहीं रहतीं ।

४०२. वियोगविषये किन्तु स्त्रियः कातराः । तापसवत्सराज १.६ ॥

वियुक्त होकर स्त्रियां अति विह्वल हो जाती हैं।

नारी-प्रेम का ईर्ष्यायुक्त होना—

४०३. ईर्ष्याहितं हि स्त्रीणां प्रकाशकं प्रेमभरस्य।
बालरामायण पृ० २४६ ॥

स्त्रियों के प्रेम में ईर्ष्या निहित रहती है।

नारी-प्रेम का गौरव—

४०४. लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रिया दुरापः कथमीप्सितो भवेत्। अभिज्ञानशाकुन्तल ३.११ ॥

लक्ष्मी को चाहने वाला उसको चाहे पाये या न पाये, लक्ष्मी जिसको चाहती है, उसको पा लेती है।

नारी-प्रेम की चंचलता—

४०५. स्त्रीणां प्रेम यदुत्तरोत्तरगुणग्रामस्पृहाचञ्चलम्।
बालरामायण ५.२ ॥

उत्तरोत्तर अधिक गुणों की इच्छा रखने से स्त्रियों का प्रेम चंचल होता है।

४०६. सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्तरागाः। मृच्छकटिक ४.१५ ॥

स्त्रियों का प्रेम सन्ध्याकालीन मेघों की लालिमा के समान क्षणिक होता है।

नारी में स्वाभाविक सौन्दर्य—

४०७. अनन्तरगामिनी स्त्रीणां लक्ष्मीः। आश्चर्यचूडामणि पृ० ६६ ॥

स्त्रियों का सौन्दर्य उनमें ही निहित रहता है।

४०८. रूपेण स्त्रियः कथ्यन्ते। पञ्चरात्र पृ० ११६ ॥

सौन्दर्य के कारण ही स्त्री को स्त्री कहा जाता है।

नारी-वध का निषेध—

४०९. अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः । आश्चर्यचूडामणि पृ० २०३ ।।
सभी प्राणियों के लिये नारी अवध्य है ।

४१०. अवश्यं स्त्रीवधो न कर्तव्यः । अभिषेकनाटक पृ० १०१ ।।
स्त्रियों का वध निश्चय रूप से नही करना चाहिये ।

४११. स्त्रैणो वधो मां न सुखीकरोति । अनर्घराघव २.६७ ।।

स्त्री का वध सुखी नही करता ।

नारी-सौन्दर्य का आदर्श—

४१२. पादौ पल्लवकोमलौ करिकरश्रीचौरमूरुद्वयं
विस्तीर्णं जघनस्थलं तनुतरो मध्यः स्तनावुन्नतौ ।
बाहू चम्पकपुष्पदामरुचिरौ पूर्णेन्दुकल्पं मुखं
केशाः कुञ्चितमेचकाः नववधूरेषा वधूलक्षणम् ।।
कौमुदीमहोत्सव १.१६ ।।

नारी का सौन्दर्य इस प्रकार होना चाहिये-पैर पल्लवों के समान कोमल, दोनों जाघे हाथी की सूंड के समान मोटी और सुन्दर, जघनस्थल फैला हुआ, कटि बहुत पतली, स्तन उभरे हुये, भुजायें चम्पक पुष्पों के समान सुन्दर, मुख चन्द्रमा के समान चमकीला और केश घुंघराले हो ।

नारी-स्वभाव की लघुता—

४१३. लघुहृदयानां...ईदृशः परिणामो भवति महिलानाम् ।
तापसवत्सराज पृ० १३५ ।।

छोटे दिल वाली महिलाओं का परिणाम ऐसा ही बुरा होता है ।

(९०) निद्रा—

४१४. चित्तं प्रसादयति लाघवमादधाति प्रत्यङ्गमुज्ज्वलयति प्रतिभाविशेषम् ।

दोषानुदस्यति करोति च धातुसाम्यमानन्दमर्पयति योगविशेषगम्यम् ॥ **चण्डकौशिक १.८ ॥**

निद्रा मन को प्रसन्न करती है, शरीर में हलकापन लाती है, प्रत्येक अंग को उज्ज्वल करती है, प्रतिभा का आधान करती है, दोषों को दूर करती है और शरीर की धातुओं को सम अवस्था में लाती है।

(६१) निराशा—

४१५. दुष्करं निराशा प्राणिति। **मालतीमाधव पृ० १८५ ॥**

निराश होने पर जीवन दुष्कर हो जाता है।

(६२) निरुपायता—

४१६. न रोहति **परिक्षतं हृदयम्।** **धूर्तविटसंवाद श्लोक ३५ ॥**

घायल हृदय का घाव भरता नहीं है।

४१७. यदि चन्द्रमणिर्हुतवहं निष्यन्दयते, कोऽत्र प्रतीकारः।
विद्धसालभञ्जिका पृ० ८० ॥

यदि चन्द्रकान्त मणि ही अग्नि को बहाने लगे, तो उसका प्रतीकार क्या हो सकता है ? सज्जन सुखकारी व्यक्ति ही दुःख देने लगे तो उसका प्रतीकार नहीं है।

(६३) निर्दोष का भयरहित होना—

४१८. नास्त्यदोषवतां भयम्। **मत्तविलास पृ० ३८ ॥**

निर्दोष व्यक्तियों को भय नहीं होता।

(९४) निष्फल प्रार्थना —

४१९. अरण्ये मया रुदितम् । अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० १९३ ॥

वन में ही रोया हूं । प्रार्थना निष्फल हुई है ।

(९५) निसर्गपवित्र द्रव्य—

४२०. तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः ।
उत्तररामचरित १.१३, महावीरचरित ४ २७ ॥

तीर्थ का जल और अग्नि निसर्ग से पवित्र हैं । इनको अन्य से शुद्धि कराने की आवश्यकता नहीं है ।

(९६) नीति के अनुसार शौर्य का प्रयोग—

४२१. देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्यं नयवादिनाम् ।
दूतवाक्य पृ० २६ ॥

नीतिज्ञ लोग वीरता का प्रयोग देश और काल की अवस्था को देखकर करते है ।

(९७) न्याय-मार्ग—

४२२. यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् ।
अपन्थायं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति ॥
अनर्घराघव १.४ ॥

न्याय के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति की सहायता पशु-पक्षी भी करते हैं ।

न्याय के विपरीत चलने वाले को सगा भाई भी छोड़ देता है।

(९८) न्यास—

४२३. **दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ।** **स्वप्नवासवदत्त** १.१० ॥

धरोहर की रक्षा करने में बहुत दुःख है।

४२४. **पुरुषेषु न्यासाः निक्षिप्यन्ते न पुनर्गृहेषु ।**

मृच्छकटिक पृ० ६२ ॥

धरोहर विश्वासी पुरुषों के पास रखी जाती हैं, घरों में नहीं।

४२५ **साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः । स्वप्नवासवदत्त** पृ० २५१ ॥

धरोहर को साक्षी के सामने लौटाना चाहिये।

४२६. **सुपरिपालनीयः खलु न्यासः ।** **स्वप्नवासवदत्त** पृ० ३६ ॥

धरोहर की अच्छी प्रकार रक्षा करनी चाहिये।

(९९) पति—

४२७. **मित्रं मन्त्री गुरुः शिष्यः स्वामी भृत्यश्च मे सदा ।**

बालरामायण १०.५ ॥

पत्नी का पति उसका मित्र, मन्त्री, गुरु, शिष्य, स्वामी और सेवक सब कुछ होता है।

४२८. **स्त्रीणां पतिर्दैवतम् ।** **बालरामायण** ४.४२ ॥

स्त्रियों के लिये उसका पति देवता ही है।

(१००) पतिव्रता—

४२९. **अहो पतिव्रतायास्तेजः।** **अभिषेकनाटक पृ० ३६ ॥**

पतिव्रता का तेज आश्चर्यजनक है।

४३०. **कः पतिदेवतामन्यः परामष्टुमुत्सहेत।**
अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४१० ॥

पति को देवता मानने वाली पतिव्रता नारी को स्पर्श करने का साहस कौन कर सकता है ?

४३१. **पतिमात्रधर्मिणी पतिव्रता नाम।** **मध्यमव्यायोग पृ० १४ ॥**

पतिव्रता नारी पति को ही एकमात्र धर्म मानती है।

४३२. **पतिव्रताज्योतिरनाभिभवनीयं ज्योतिरन्तरैः।**
बालरामायण पृ० ६३५ ॥

पतिव्रता ज्योति को अन्य ज्योति पराभूत नहीं कर सकती। पतिव्रता का कोई तिरस्कार नहीं कर सकता।

४३३. **परिहरति चन्द्रदर्शनं कमलिनी।** **कौमुदीमहोत्सव पृ० ७ ॥**

कमलिनी चन्द्रमा का दर्शन नहीं करती। पतिव्रता नारी अन्य पुरुष को नहीं देखती।

४३४. **भर्तुश्चरणावनुगच्छन्त्या आत्मानुग्रहो भविष्यति।**
मुद्राराक्षस पृ० १९४ ॥

पति के चरणों का अनुसरण करना ही मुझ पर अत्यधिक कृपा है।

(१०१) पत्नी—

४३५. **इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो–**
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकसरः

किमस्याः न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः ॥

उत्तररामचरित १.३८ ॥

पत्नी घर में लक्ष्मी होती है, आँखों के लिये अमृत की बत्ती है, इसका शरीर का स्पर्श चन्दन के रस के समान है, कण्ठ में डाली गई इसकी भुजा शीतल चिकनी मोतियों की माला है। इसका सभी कुछ प्रिय है, परन्तु विरह असह्य है।

४३६. **तुल्यान्वयेत्यनुगुणेति गुणोन्नतेति**
दुःखे सुखे च सुचिरं सहवासिनीति। कुन्दमाला १.१२ ॥

पत्नी समान कुल वाली, गुणवती होते हुये भी अनुकूल गुणों वाली और सुख-दुःख में सदा साथ देने वाली होती है।

४३७. **त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयम्।**

उत्तररामचरित ३.२६ ॥

पत्नी पति का जीवन है और दूसरा हृदय है।

पत्नी-त्याग में पाप—

४३८. **दारत्यागी भवाम्याहो। अभिज्ञानशाकुन्तल ५.२६ ॥**

पत्नी का परित्याग करने में पाप होता है।

पत्नी पर पति का अधिकार—

४३९. **अतः समीपे परिणेतुरिष्यते**
प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः।

अभिज्ञानशाकुन्तल ५.१७ ॥

पति को प्रिय हो या न हो, स्त्री को उसके बन्धु पति के पास ही भेज देना चाहते हैं।

४४०. **उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी।**

अभिज्ञानशाकुन्तल ५.२६ ॥

पत्नी के प्रति पति को सभी प्रकार का अधिकार है ।

४४१. भर्तृनाथा हि नार्यः । प्रतिमानाटक १.२५ ॥

स्त्रियों का स्वामी पति ही होता है ।

पत्नी-पुत्र के तिरस्कार में दोष—

४४२. यो ह्युपनतस्य पुत्रदारानभिमन्यते तस्योद्विग्नं मण्डलमभावायोपतिष्ठते । अनर्घराघव पृ० १६३-१६४ ॥

जो समीप आये पुत्र और पत्नी का तिरस्कार करता है, उसके राज्य में उपद्रव होते हैं और सदा अभाव बना रहता है ।

पत्नी-विरह—

४४३. प्रियानाशे कृत्स्नं जगदिदमरण्यं हि भवति ।

उत्तररामचरित ६.३० ॥

४४४. जगज्जीर्णारण्यं भवति च कलत्रे ह्युपरते ।

उत्तररामचरित ६.३८ ॥

पत्नी के न रहने पर पति के लिये सारा संसार पुराना जंगल प्रतीत होता है ।

(१०२) परमेश्वर-देवता—

४४५. अधर्मो धर्मतामेति ह्यादृते परमेश्वरे ।
धर्मोऽप्यधर्म एव स्यात्तमनादृत्य भावितः ।।

महावीरचरित ५.५० ॥

परमेश्वर का आदर करने पर अधर्म भी धर्म हो जाता है तथा उसका अनादर करके धर्म भी अधर्म होता है ।

४४६. अनतिदीर्घसन्निधाना हि देवताः । कुन्दमाला पृ० २८६ ॥

देवता अधिक दीर्घ समय तक समीप नहीं रहते ।

४४७. अनन्यसदृशः प्रभावो मन्ये देवतायाः । रत्नावली पृ० ४० ॥

देवता का प्रभाव असामान्य होता है ।

४४८. अव्याहतं देवस्य तेजः । तापसवत्सराज पृ० २२० ॥

देवता का तेज कभी व्याहत नहीं होता ।

४४९. अव्याहतान्तःप्रकाशा हि देवता सत्वेषु ।

उत्तररामचरित पृ० ४५८ ॥

देवता प्राणियों के अन्तःकरण को अव्याहत रूप से जान लेते हैं ।

४५०. अस्त्येतदन्यसमाधिभीरुत्वं देवतानाम् ।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० १६८ ॥

प्रसिद्ध है कि देवता दूसरों की समाधि (तपस्या) से डरते हैं ।

४५१. एवमनिर्ज्ञातानि देवतान्यवधूयन्ते । स्वप्नवासवदत्त पृ० ८ ॥

परिचय के न होने पर देवताओं की भी तिरस्कार हो जाता है ।

४५२. कुतस्तस्य विजयादन्यद् यस्य पुराणपुरुषो भगवान् नारायणः स्वयं मङ्गलान्याशास्ते । वेणीसंहार पृ० २८४ ॥

स्वयं पुराण पुरुष भगवान् जिसके लिये विजय की कामना करते हैं, उसको विजय ही प्राप्त होगी ।

४५३. को हि नाम भगवता संदिष्टं विकल्पयति ।

वेणीसंहार पृ० २३४ ॥

भगवान् के संदेश पर कौन संदेह कर सकता है ।

४५४. तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्सि देवं पुराणम् ।

वेणीसंहार १.२३ ॥

मोह से अन्धा व्यक्ति पुराण पुरुष भगवान् को नहीं जान सकता ।

४५५. तद्गा श्रीः यस्य प्रीतः स खलु भगवान् पार्वतीप्राणनाथः ।
बालरामायण ४.४ ।।

उसको विजय-लक्ष्मी प्राप्त होती है, जिसके प्रति शिव प्रसन्न रहते हैं ।

४५६. तपसा मनसा वाग्भिः पूजिताः बलिकर्मभिः ।
तुष्यन्ति शमिनां नित्यं देवताः किं विचारितैः ।।
मृच्छकटिक १ १६ ।।

तपस्या से, मन से और वाणियों से पूजन-कार्यों में पूजित किये जाते हुये देवता इन्द्रियों का शमन करने वाले व्यक्तियों के प्रति सन्तुष्ट रहते हैं ।

४५७ त्रैलोक्यव्ययनाटिकानयनटः स्वामी जगत् त्रायताम् ।
अनर्घराघव ७.१११ ।।

तीनों लोकों की रक्षा करने रूपी नाटिका का अभिनय करने वाला वह प्रभु संसार की रक्षा करे ।

४५८. न किञ्चिन्न ददाति भगवान् प्रसन्नः । बेणीसंहार पृ० २८६ ।।

प्रसन्न होकर भगवान् क्या नहीं देता ?

४५९. वह्वाश्चर्याणि देवतानि । कौमुदीमहोत्सव पृ० ३९ ।।

देवताओं के कार्य बहुत आश्चर्यकारी हैं ।

४६०. भक्त्या तुष्यन्ति देवतानि । चारुदत्त पृ० ३३ ।।

देवता भक्ति से सन्तुष्ट होते हैं ।

४६१. यद्देवस्त्रिभुवनाथो वदति तत्कथमन्यथा भविष्यति ।
वेणीसंहार पृ० २३४ ।।

तीनों लोकों के स्वामी भगवान् जो कहते हैं, उसका उलटा कैसे हो सकता है ?

४६२. वन्द्याः खलु देवताः । नागानन्द पृ० ३२ ।।

देवता निश्चय से वन्दनीय होते है ।

४६३. **स्वर्गं गतानां तावद्देवा दुःखितं परिजनमनुकल्पन्ते ।**

मुद्राराक्षस पृ० १६६ ॥

स्वर्ग में जाने वालो के दुःखी परिजनों पर देवता कृपा करते हैं ।

(१०३) परस्त्रीगमन—

४६४. **अनार्यः परदारव्यवहारः ।** अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४८३ ॥

दूसरों की पत्नियो से व्यवहार रखना आर्यों के योग्य नहीं है ।

४६५ **अनिर्वर्णनीयं परकलत्रम् ।** अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३४६ ॥

दूसरों की पत्नी को नही देखना चाहिये ।

४६६. **अन्यकलत्रप्रसक्तो न शक्यते वारयितुम् ।** मृच्छकटिक ३.२ ॥

परस्त्री के प्रति आसक्त मनुष्य को रोका नही जा सकता ।

४६७. **अन्यस्त्रीगोत्रग्रहणं हि महानुपप्लवः कामुकानाम् ।**

धूर्तविटसंवाद पृ० ६४ ॥

कामुक व्यक्ति के लिये अन्य स्त्री का नाम लेना महान् उपद्रव का कारण है ।

४६८. **परस्त्रीस्पर्शपांसुलः ।** अभिज्ञानशाकुन्तल ५.२६ ॥

परस्त्री का स्पर्श करने से पाप लगता है ।

४६९. **वशिनां हि परपरिग्रहसंश्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः ।**

अभिज्ञानशनकुन्तल ५.२८ ॥

जितेन्द्रिय पुरुष परस्त्रियों के स्पर्श से दूर रहते हैं ।

(१०४) पराधीनता—

४७०. **कथं न वाच्या परतन्त्रवृत्तिः ।** सुभद्राधनञ्जय २.१ ॥

पराधीन रहना सदा निन्दनीय होता है ।

४७१. परवशा न विद्म एव, किमत्र कुर्मः ।

तापसवत्सराज पृ० १८६ ॥

पराधीन व्यक्ति नहीं जानते कि वे क्या करें ?

४७२. परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेतु पुरुषः । मुद्राराक्षस ३.४ ॥

पराधीन मनुष्य प्रेम के आनन्द को नहीं जानता ।

४७३. विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति ।

मुद्राराक्षस ५.४ ॥

विचार की सीमा से पार पराधीन व्यक्ति हित-अहित का विचार नही कर सकता ।

(१०५) परोपकार—

४७४. ईदृशानां विपाकोऽपि जायते परमाद्भुतः ।
यत्रोपकारिणीभावमायात्येवंविधो जनः ॥

उत्तरामचरित ३.३ ॥

महान् पुरुष जब परोपकार करते हैं तो इसका परिणाम अति अद्भुत होता है ।

४७५. उपक्रियमाणाभावे किमुपकारेण ? वेणीसंहार पृ० १८४ ॥

जब उपकार नही किया जा सकता तो उपकरणों से ही क्या लाभ है ?

४७६. एकः श्लाघ्यो विवस्वान् परहितकारणायैव यस्य प्रयासः ।

नागानन्द ३.१८ ॥

एकमात्र सूर्य ही प्रशंसनीय है, जिसके प्रयत्न परोपकार करने के लिये ही है ।

४७७. जायन्ते च म्रियन्ते च मादृशाः क्षुद्रजन्तवः ।

परार्थे बद्धकक्ष्याणां त्वादृशामुद्भवः कुतः ।।

नागानन्द ४ १६ ।

क्षुद्र प्राणी तो पैदा होते हैं और मर जाते हैं। परोपकार के लिये कमर बांधने वालों की उत्पत्ति कहां होती है ?

४७८ नरः प्रत्युपकारार्थी विपत्तौ लभते फलम् । चारुदत्त ४.७ ।।

प्रत्युपकार करने वाला व्यक्ति विपत्ति में उसका फल पाता है।

४७९. न हि लोकोपकारनिरतो लोकनाथो लोकं विनाशयति ।

मत्तविलास पृ० १३ ।।

प्रजाओं के उपकार में लगा हुआ राजा प्रजा का विनाश नही करता।

४८०. परनिर्वहणपराणामपरिहरणीया दुःखपरम्परा ।

सुभद्राधनञ्जय पृ० ४४ ।।

परोपकार करने वालों को दुःख अवश्य सहना होता है।

४८१. परेषामुपकाराय न कथञ्चिनन्न साधवः ।

चण्डकौशिक २.३० ।।

सज्जन लोग किसी न किसी प्रकार परोपकार करते ही रहते हैं।

४८२. भूयात् परार्थः खलु देहभारः । नागानन्द ४.२६ ।।

यह शरीर परोपकार के लिये ही हो।

४८३. महतीं प्रीतिमाधत्ते परार्थे देहमुज्झतः । नागानन्द ४.२१ ।।

दूसरों के उपकार के लिये शरीर का त्याग करते हुये बहुत आनन्द होता है।

(१०६) पिता—

४८४. पुत्रापेक्षीणि खलु पितृहृदयानि । मध्यमव्यायोग पृ० ४५ ।।

पिताओं के हृदय पुत्रों की ही अपेक्षा करते हैं।

(१०७) पिशुन—

४८५. निःशेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुःसहा वज्रलेपाः।
प्रियदर्शिका ४.१२ ॥

वज्र के लेप के समान दुःसह चुगलखोरों की बातें सम्पूर्ण रूप मे समाप्त हो जावें।

(१०८) पुत्र—

४८६. अन्तःकरणतत्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरित्येकोऽयमपत्यमिति भण्यते ॥
उत्तररामचरित ३.१७ ॥

स्नेह का आश्रय होने से पति-पत्नी के अन्तःकरण में रहने वाली आनन्द की ग्रन्थि को ही अपत्य कहते है।

४८७. **अयं स हृदयाह्लादी पुत्रगात्रसमागमः। पञ्चरात्र २.६६ ॥**

पुत्र के शरीर का स्पर्श हृदय को आह्लादित करता है।

४८८. इदं तत्स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः।
अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम् ॥ मृच्छकटिक १०.२३ ॥

धनी और निर्धन सभी व्यक्तियों के लिये पुत्र स्नेह का सर्वस्व है। यह चन्दन और खस के बिना ही हृदय का अनुलेपन है।

४८९. **एतदन्योन्यसंश्लेषणं पित्रोः। उत्तररामचरित पृ० २२० ॥**

पुत्र माता-पिता को एक दूसरे से मिलाने वाला होता है।

४६०. एष लोकस्वभावः बहुपुत्राणामेकस्मिन् ईषत्पक्षपातः ।

आश्चर्यचूडामणि पृ० ३० ॥

लोगों का यह स्वभाव है कि अनेक पुत्रों में से किसी एक के प्रति अधिक पक्षपात होता है ।

४६१. **कष्टं खल्वनपत्यता ।** **अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४३३ ॥**

सन्तान का न होना निश्चय से कष्टप्रद है ।

४६२. **जितमपत्यस्नेहेन ।** **उत्तररामचरित पृ० ४५२ ॥**

अपत्य का स्नेह सदा जीतता है ।

४६३. **नृणां लोकान्तरस्थानां देहप्रतिकृतिः सुतः ।**

मृच्छकटिक ६.४२ ॥

दूसरे लोकों में जाने वालों का प्रतिरूप पुत्र ही होता है ।

४६४. **पितापुत्रभावो हि पुत्रस्य महिमानं गोपयति ।**

महावीरचरित पृ० २१६ ॥

पिता-पुत्र के एक साथ होने पर पुत्र की महिमा कम हो जाती है ।

४६५. **प्रभवति पितुः पुत्रनाशजन्मा हृदयज्वरः ?**

वेणीसंहार पृ० १८८ ॥

पुत्र के नाश से उत्पन्न हृदय की पीड़ा को पिता सहन नहीं कर सकता ।

४६६. **प्रसवः खलु प्रकृष्टपर्यन्तः स्नेहस्य ।**

उत्तररामचरित पृ० २२० ॥

सन्तान निश्चय से प्रेम की अन्तिम सीमा है ।

४६७. **शून्यमपुत्रस्य गृहम् ।** **मृच्छकटिक १.८ ॥**

पुत्र से रहित व्यक्ति का घर सूना है ।

४६८. **सन्ततिच्छेदनिरवलम्बानां कुलानां मूलपुरुषावसाने सम्पदः**

परमुपतिष्ठन्ते । अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४३६ ॥

पुत्र के न रहने से आश्रयहीन कुलों की सम्पत्तियां मूल पुरुष के न रहने पर दूसरों को प्राप्त हो जाती हैं ।

(१०९) पुत्र का कर्तव्य—

५००. आपदं हि पिता प्राप्तो ज्येष्ठपुत्रेण तार्यते ।
मध्यमव्यायोग १.१९ ॥

आपत्ति में पड़े पिता को ज्येष्ठ पुत्र उससे पार कराता है ।

५०१. यावदयं संसारस्तावत् प्रसिद्धैवेयं संसारयात्रा यत्पुत्रैः पितरो लोकद्वयेऽप्यनुवर्तनीयाः । वेणीसंहार पृ० १०८ ॥

यह प्रसिद्ध है कि जब तक संसार का व्यवहार रहता है, पुत्रों को चाहिये कि वे दोनों लोकों में पिता का अनुसरण करें ।

(११०) पुरुष हृदय की कठोरता—

५०२. अविश्वसनीयता प्रकृतिनिष्ठुरभावानां पुरुषहृदयानाम् ।
कुन्दमाला पृ० ६३ ॥

स्वभाव से निष्ठुर पुरुषों के हृदयों पर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

५०३. नृशंसता हि नाम पुरुषदोषः । महावीरचरित पृ० ७९ ॥

नृशंस होना पुरुष का दोष है ।

५०४. हृदयं वज्रेण कृतं मन्ये । नागानन्द ४.९ ॥

पुरुष का हृदय मानो वज्र से बना होता है ।

(१११) पुरुषार्थ–साहस–उत्साह—

५०५. अखण्डितप्रसरा हि पुरुषकारा कर्णाटानाम् ।

बालरामायण पृ० ५ ॥

कर्णाट देशवासी पुरुषों के पुरुषार्थ अखण्डित रहते हैं।

५०६. किं पुनः साहसिकानां पुरुषाणां न सम्भाव्यते ?

रत्नावली पृ० ११० ॥

साहसी पुरुषों के लिये सभी कुछ सम्भव है ।

५०७. देव पुरुषकारेण वञ्चयिष्याम्यहं ध्रुवम् ।

बालचरितम् २.१४ ॥

भाग्य को पुरुषार्थ द्वारा निश्चय ठग लूंगा । भाग्य पर भरोसा न करके पुरुषार्थ करना चाहिये ।

५०८ न खलु व्यापारमन्तरेण करकलितापि शुक्तिर्विमुञ्चति मौक्तिकानि । विद्धसालभञ्जिका पृ० ३० ॥

कार्य किये बिना हाथ में रखी हुई सीपी भी मोती को नहीं छोड़ती । कार्य किये बिना कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती ।

५०९ ननु भवति विवीतं द्रव्यमेव क्रियाभिः । बालरामायण ४.१५ ॥

कार्य करने से ही धन प्राप्त होता है ।

५१०. न प्राप्नुवन्ति यतयो रुदितेन मोक्षम् ।

पादताडितक श्लोक ५ ॥

सन्यासी लोग रोकर मोक्ष नहीं प्राप्त करते ।

५११. न बाहवः प्रमाणं पौरुषस्य । आश्चर्यचूडामणि पृ० ६७ ॥

पुरुषार्थ के लिये भुजायें प्रमाण नहीं हैं । मनुष्य मन के उत्साह से कार्य करता है ।

५१२. न ह्यनारुह्य नागेन्द्रं वैजयन्ती निपात्यते ।

प्रतिमानाटक ४.१६ ॥

हाथी पर चढ़े बिना शत्रु का झण्डा नहीं गिराया जा सकता । आगे बढ़कर काम करने से प्रयोजन पूरा होता है ।

५१३ पराक्रमेण तु पुरुषाः । **पञ्चरात्र पृ० ११६ ॥**

पराक्रमी होने से ही कोई पुरुष कहाता है ।

५१४. प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ।

स्वप्नवासवदत्त ६.७ ॥

उत्साही जन ही राजलक्ष्मी का भोग करते हैं ।

५१५. भवति तनय सत्यं संशयः साहसेषु । **वेणीसंहार ५.२१ ॥**

साहस के कार्यों में सन्देह रहता ही है ।

५१६. यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः ।

अविमारक ३.१२ ॥

प्रयत्न करने पर भी कार्य सिद्ध न हो तो देखना चाहिये कि क्या कमी रह गई है ।

५१७. यत्नैः शुभैः पुरुषता भवतीह नृणाम् । **अविमारक ३.१२ ॥**

शुभ प्रयत्नों द्वारा ही मनुष्य को पुरुषत्व प्राप्त होता है ।

५१८. साहसे खलु श्रीर्वसति । **चारुदत्त पृ० १११ ॥**

५१९. साहसे श्रीः प्रतिवसति । **मृच्छकटिक पृ० १५० ॥**

साहस में ही लक्ष्मी निवास करती है ।

५२०. दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम् ।

वेणीसंहार ३.३७ ॥

कुल में जन्म लेना तो भाग्य के आधीन है । मेरे आधीन तो पुरुषार्थ करना है ।

(११२) प्रकृति-स्वभाव—

५२१. अन्यद्धि शास्त्रमन्यथा प्रकृतिः । पादताडितक पृ० २०० ॥

शास्त्र की बात तो और है, परन्तु स्वभाव और ही होता है ।

५२२. उत्सवप्रियाः मनुष्याः । अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३६८ ॥

मनुष्य स्वभाव से उत्सव प्रिय होते हैं ।

५२३. दुस्तत्यजा प्रकृतिः । बालरामायण पृ० ५८ ॥

स्वभाव का छूटना कठिन है ।

५२४. निसर्गो ह्येष वृद्धानां यत्तु श्रेयस्तथैव तत् ।
महावीरचरित ४.२६ ॥

वृद्ध जनों का यह स्वभाव है कि जो कल्याणकारी हो, वे वही करते हैं ।

५२५. परिवर्तते प्रकृतिरापदि हि । आश्चर्यचूडामणि ३ २६ ॥

आपत्ति में स्वभाव भी बदल जाता है ।

५२६. प्रकृतिर्दुस्त्यजा । वेणीसंहार पृ० ११६ ॥

स्वभाव का छूटना कठिन है ।

५२७. मनुष्याणामस्त्येव सम्भ्रमः । दूतवाक्य पृ० ८ ॥

मनुष्यों को भ्रान्ति होना स्वाभाविक है ।

५२८. योऽपि स्वभावदोषो न शक्यते वारयितुम् । मृच्छकटिक ३ २ ॥

स्वभाव के दोष को रोकना सम्भव नहीं ।

५२९. लघुजनस्य सुलभो विस्मयः । चारुदत्त पृ० ६८ ॥

तुच्छ व्यक्तियों को विस्मय होना स्वाभाविक है ।

(११३) प्रज्ञान—

५३०. प्रभवति कुतोऽनर्थः प्रज्ञाने चेदपथोन्मुखी।

आश्चर्यचूडामणि ३.४२ ॥

यदि अपथ (बुरा मार्ग) पर जाने पर प्रज्ञान (ठीक प्रकार का ज्ञान) हो जावे तो अनर्थ नहीं हो सकता।

(११४) प्रणयिनी के तिरस्कार में दोष—

५३१. ये कामिनीं गुणवतीं च सयौवना च नारी नराः प्रणयिनी च विमानयन्ति।
ते भोः कृषीवलवचःपरिदाघचित्तैर्गोभिः समं पृथुमुखेषु हलेषु योज्याः॥ धूर्तविटसंवाद श्लोक ३६ ॥

जो व्यक्ति कामना करती हुई, गुणवती, युवती, प्रणय करने वाली नारी का तिरस्कार करते हैं, उनको किसानों की गालियों से जलते हृदय वाले बैलों के साथ चौड़े मुख वाले हलों में जोतना चाहिये।

(११५) प्रणयिनी-कोप—

५३२. प्रणयिनीनां हि कोपो विषमज्वर इव दुश्चिकित्स्यः।

धूर्तविटसंवाद पृ० ६३ ॥

प्रणयिनी का क्रोध विषम ज्वर के समान दुश्चिकित्स्य होता है।

५३३. प्रसादरसोन्मुखमनसोऽपि विलासहेतोः कामिन्यः कुप्यन्ते।

बालरामायण पृ० २६० ॥

प्रसन्नता से भरे मन वाले व्यक्ति के प्रति कामिनियाँ विलास के लिये भी कुपित होती हैं।

(११६) प्रणयी का तिरस्कृत होना—

५३४. **आत्माभिप्रायसम्भावितेष्टजनचित्तवृत्तिः प्रार्थयिता विडम्ब्यते ।**
अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० १८७ ॥

प्रिय जन की चित्त-वृत्ति को अपने अनुसार समझने वाला प्रणयी तिरस्कार को पाता है ।

(११७) प्रत्यक्ष—

५३५. **करतल आमलके किं दुर्विवादेन । तपतीसंवरण पृ० ६६ ॥**

आँवले के हथेली में रखे होने पर कुत्सित विवाद से क्या लाभ है ? प्रत्यक्ष से बड़ा प्रमाण नहीं है ।

५३६. **प्रत्यक्षे हेतुवचनं निरर्थकम् । धूर्तविटसंवाद पृ० ६२ ॥**

प्रत्यक्ष प्रमाण होने पर अन्य कोई हेतु देना निरर्थक है ।

५३७ **हस्तकङ्कणं किं दर्पणे न दृश्यते ? कर्पूरमञ्जरी पृ० ३० ॥**

हाथ कंगन को आरसी क्या ?

(११८) प्रयाग—

५३८. **यस्मिन्नापः सह परिगताः सूर्यपुत्रीपयोभिः**
मन्दाकिन्याः कुमुदरुचयो मेचकेन्दीवराभिः ।
तीर्थे तस्मिन् मम विशदितं देवताभूय भूयः
स्वाङ्गत्यागात् स्पृहयति मनो वासवार्धासनाय ॥
बालरामायण ६.७२ ॥

जिस स्थान पर कुमुदों के समान शुभ्र मन्दाकिनी के जल नील कमलों के

सदृश श्यामल सूर्यपुत्री यमुना के जलों से मिलते हैं, उस प्रयाग तीर्थ में पुनः पुनः देवता बन कर अपने शरीर का त्याग करके मेरा मन इन्द्र के अर्धासन को प्राप्त करने की स्पृहा करता है।

५३९. सख्यं गता यमुनया सह यत्र गङ्गा यत्राप्नुवन्ति मुनयः स्वसमीहितानि ।
पापीयसां भवति यत्र परा विशुद्धिस्तं मामितो नयतमिष्टफलं प्रयागम् ।। **तापसवत्सराज ५.२२ ।।**

जहाँ यमुना के साथ गंगा का मिलन हुआ है, जहां मुनिजन अपनी अभीष्ट सिद्धियों को प्राप्त करते हैं, जहां पापियों को परम विशुद्धि प्राप्त होती है, इष्ट फल देने वाले उस प्रयाग में मुझको ले चलो।

(११९) प्रसाधन—

५४०. कीदृशी नयनाञ्जनेन विना प्रसाधनलक्ष्मीः ।

कर्पूरमञ्जरी पृ० ४२ ।।

आंखों में अंजन लगाये विना प्रसाधन का सौन्दर्य पूरा नहीं होता।

५४१. कीदृशो नवमालिकया विना शेखरकः ।

नागानन्द पृ० १०० ।।

नवमालिका के पुष्पों के बिना शिरोभूषण की शोभा नही है।

५४२. निसर्गचङ्गस्यापि मानुषस्य शोभा समुन्मीलति भूषणैः ।

कर्पूरमञ्जरी २ २५ ।।

स्वभाव से सुन्दर मनुष्य का सौन्दर्य भी आभूषणों से निखर जाता है।

५४३. यस्य नैसर्गिकी शोभा तन्न संस्कारमर्हति ।

आश्चर्यचूडामणि ३ २४ ।।

स्वाभाविक सौन्दर्य को प्रसाधन की आवश्यकता नहीं है।

(१२०) प्रायश्चित—

५४४. अपि त्वार्तानुपातानि प्रायश्चितानि ।

पादताडितक पृ० २४६ ॥

पीडा के अनुपात से ही प्रायश्चित किये जाते हैं।

५४५. प्रायश्चित्त एव राजदण्डेऽप्येनसे निष्क्रयमामनन्ति धर्माचार्या: ।

महावीरचरित पृ० १४१ ॥

धर्माचार्यों का कथन है कि राजा द्वारा दण्डित होने पर भी पाप का प्रक्षालन प्रायश्चित से ही होता है ।

५४६. महान्ति भूतानि प्रायश्चित्तैरपनीतकल्माषाणि भवन्ति ।

मत्तविलास पृ० २६ ॥

प्रायश्चित्त द्वारा ही महान् प्राणियों के पाप दूर होते हैं ।

(१२१) प्रियजन-स्नेह—

५४७. अहो प्रभावः प्रियसङ्गमस्य मृतोऽपि यो नाम पुनर्धियेत ।

मृच्छकटिक १०.४३ ॥

प्रिय जन से मिलन का प्रभाव आश्चर्यजनक है। इससे मरते हुये के भी प्राण बच जाते हैं ।

५४८. प्रियनिवेद्यमानानि प्रियाणि प्रियतराणि भवन्ति ।

अविमारक पृ० ६१ ॥

प्रिय के द्वारा कही गई प्रिय बातें और भी अधिक प्रिय लगती हैं ।

[१२२] बन्धु—

५४९ पुण्यसञ्चयसम्प्राप्तामधिगम्य नृपश्रियम् ।
वञ्चयेद् यः सुहृद्बन्धून् स भवेद् विफलश्रमः ॥

दूतवाक्य १.२५ ॥

पुण्यों के संचय द्वारा राजलक्ष्मी को प्राप्त करके जो अपने मित्रों तथा बन्धुओं को उससे वंचित रखता है, उसका श्रम व्यर्थ है ।

५५०. सम्बन्धो बन्धुभिः श्रेयांल्लोकयोरुभयोरपि ।

दूतवाक्य १.१९ ॥

दोनों लोकों में भी बन्धुओं के साथ सम्बन्ध रखना कल्याणकारी होता है ।

[१२३] बलशाली का न्याय—

५५१. तिमिङ्गलगिलन्यायोऽयं शृङ्गयति । बालभारत पृ० ४५ ॥

यहाँ तिमिंगिल-गिल न्याय प्रकट होता है । बलशाली व्यक्ति निर्बल को निगल जाता है, जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी को निगल जाती है ।

५५२. तीक्ष्णतरा ह्यायुधश्रेणयः शिशोरपि दृप्तां वाचं न सहन्ते ।
उत्तररामचरित पृ० २३७ ॥

अति तीक्ष्ण शस्त्रधारी व्यक्ति बच्चे की भी घमण्ड से भरी वाणी को सहन नहीं करते ।

५५३. बहु मन्यते खलु तावद् बलवज्जनदुर्लभोऽनुनयः ।

चारुदत्त पृ० २४-२५ ॥

बलवान् व्यक्ति द्वारा अनुनय दुर्लभ है और उसको बहुत मानना चाहिये ।

[१२४] बुद्धि—

५५४. न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम ।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३१३ ॥

बुद्धिमानों को कुछ भी अविदित नहीं रहता ।

५५५. प्रज्ञावतां हि चक्षुरक्षुद्रमतिविषयासु धिषणासु प्रतिवसति ।

बालरामायण पृ० १६६ ॥

बुद्धिमानों की विशाल आंख सूक्ष्म विषयों को भी जानने वाली बुद्धियों में निवास करती है ।

५५६. प्राज्ञस्य मूर्खस्य च कार्ययोगे समत्वमभ्येति तनुर्न बुद्धिः ।

अविमारक ५.५ ॥

कार्य को करने में बुद्धिमान और मूर्ख का शरीर तो बराकर होता है, बुद्धि नहीं ।

५५७. मतिः परिणमन्ती पुरुषमुदात्तयति न वयः ।

बालरामायण पृ० ५७६ ॥

बुद्धि का विकास ही मनुष्य को उदार बनाता है, आयु नहीं ।

५५८. विषयेषु नैष्ठिकानां सर्वपथीना मतिः क्रमते ।

अनर्घराघव १.४४ ॥

नैष्ठिक मनुष्यों की बुद्धि सभी विषयों को जानती हुई कार्यों में समर्थ होती है ।

५५९. वृद्धबुद्धिर्हि प्रथमं पश्यति चरमं कार्यदुर्योगोऽवतरति ।

बालरामायण पृ० २३८ ॥

वृद्ध जनों की बुद्धि कार्यों के अन्तिम दुष्परिणाम को समझ कर कार्य करती है ।

५६०. शाठ्यं नाम अर्थनिर्वर्तको बुद्धिविशेषः ।

धूर्तविटसंवाद पृ० १०६ ॥

प्रयोजन को सम्पन्न करने वाली विशिष्ट बुद्धि को ही शाठ्य कहते हैं ।

५६१. शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः । **बालभारत १.६ ॥**

शुद्ध बुद्धि कामनाओं को पूरा करती है।

[१२५] बुद्धि की चञ्चलता—

५६२. नूनं चंचलबुद्धीनां स्नेहकोपावकारणौ। हनूमन्नाटक १२.१ ॥

चंचल बुद्धि वाले मनुष्यों का स्नेह और कोप अकारण होते हैं।

५६३. परिक्लिष्टतया व्याकुलितचित्तानां बुद्धयो हि ससम्भ्रमा भवन्ति
उभयाभिसारिका पृ० १२८ ॥

क्लेश होने पर व्याकुल मन वाले मनुष्यों की बुद्धियों में भ्रान्ति हो जाती है।

[१२६] बुद्धि की विवेकशीलता—

५६४. हंसो हि क्षीरमादत्ते तन्मिश्राः वर्जयत्यपः।
अभिज्ञानशाकुन्तल ६.२८ ॥

हंस दूध को लेकर उसमें मिले जल को छोड़ देता है। बुद्धिमान मनुष्य अपने विवेक से उत्तम को ग्रहण कर उसमें मिले निकृष्ट को छोड़ देते हैं।

[१२७] ब्रह्मक्षत्र—

५६५. अमोघमस्त्रं क्षत्रस्य ब्राह्मणानामनुग्रहः।
दुरासदं च तत्तेजः क्षत्रं यद् ब्रह्मसंयुतम् ॥
महावीरचरित २.५ ॥

ब्राह्मणों की कृपा ही क्षत्रियों का अमोघ अस्त्र है। ब्रह्मशक्ति से युक्त क्षात्र तेज पराजित नहीं हो सकता।

[१२८] ब्राह्मण—

ब्रह्मतेज—

५६६ सर्वाभिभावि किमप्यनभिभवनीयं तेजसामुपरि तपोमयं ब्रह्मतेजः।
चण्डकौशिक पृ० ५७

तपोमय ब्रह्मतेज सबसे ऊपर है, सबको पराजित करने वाला है और किसी से तिरस्कृत नहीं होता।

ब्राह्मण का गुरु होना—

५६७. रघूणां ब्राह्मणः किमपि यदमी गोत्रगुरवः।
बालरामायण ४.६४ ॥

ब्राह्मण लोग रघुवंशियों के भी गुरु हैं।

ब्राह्मण का भय से रहित होना—

५६८. प्रकृतिमुखरा हि ब्राह्मणजातिः। बालरामायण पृ० ७० ॥

ब्राह्मण जाति स्वभाव से मुखर है।

५६९. भयमिति किमेतद् ब्राह्मणस्य। अनर्घराघव पृ० ७३ ॥

ब्राह्मण भय को नहीं जानता।

ब्राह्मण की अभिलाषा की पूरणीयता—

५७०. अनतिक्रमणीया भगवती ब्राह्मणकाम्या।
मृच्छकटिक पृ० १२४ ॥

ब्राह्मण की कामना का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

५७१. अनतिक्रमणीयो ब्राह्मणप्रणयः। मृच्छकटिक पृ० १२४ ॥

ब्राह्मण के प्रणय का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

ब्राह्मण की अवध्यता—

५७२. अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत् ।

मृच्छकटिक ९.३९ ॥

मनु का कथन है कि पापी ब्राह्मण का भी वध नहीं करना चाहिये ।

५७३. ब्राह्मणशोणितमेतत् । गलं दहद्दहत्प्रविशति ।

वेणीसंहार पृ० ९२ ॥

यह ब्राह्मण का रक्त है । गले को जलाता हुआ प्रवेश करता है । ब्राह्मण का धन हरण करना भी बहुत कष्ट पहुंचाता है ।

५७४. यद्वा तद्वा भवतु न वयं प्रवीराः ब्राह्मणेषु ।

हनूमन्नाटक १ ४४ ॥

जो कुछ भी हो, हम ब्राह्मणों के प्रति पराक्रमी नहीं हैं ।

ब्राह्मण की पूजनीयता एवं कल्याणकामना–

५७५. द्विजोत्तमाः पूज्यतमाः पृथिव्याम् । **मध्यमव्यायोग १.९ ॥**

पृथिवी पर ब्राह्मण सबसे अधिक पूजनीय हैं ।

५७६. ब्रह्मभ्यः शिवमस्तु । बालभारत १.५, बालरामायण १.१० ॥

ब्राह्मणों का कल्याण हो ।

५७७. पूज्यतमाः खलु ब्राह्मणाः । मध्यमव्यायोग पृ० ३४ ॥

ब्राह्मण सबसे अधिक पूजनीय हैं ।

ब्राह्मण के लिये यज्ञोपवीत–

५७८. यज्ञोपवीतं हि ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम् ।

मृच्छकटिक पृ० १२० ॥

ब्राह्मण के लिये यज्ञोपवीत महान् उपकरण है ।

ब्राह्मण का लेख–

५७९ श्रोत्रियाक्षराणि प्रयत्नलिखितान्यपि नियतमस्फुटानि भवन्ति ।

मुद्राराक्षस पृ० २४ ॥

प्रयत्न से लिखने पर भी ब्राह्मण के अक्षर अस्पष्ट होते हैं ।

ब्राह्मण के वचन–

५८०. किं ब्राह्मणवचनान्यन्यथा भवन्ति । विक्रमोर्वशीय पृ० १८० ॥

ब्राह्मण के वचन अन्यथा नहीं हो सकते ।

५८१. सिद्धं ह्येतद् वाचि वीर्यं द्विजानाम् । उत्तररामचरित ५.३२ ॥

यह सिद्ध है कि ब्राह्मणों का पराक्रम उनकी वाणी में रहता है ।

ब्राह्मण द्वारा कल्याण–

५८२. न तस्य राष्ट्रं व्यथते न रिष्यति न जीर्यति ।
त्वं विद्वान् ब्राह्मणो यस्य राष्ट्रगोपः पुरोहितः ॥

महावीरचरित २. १८ ॥

विद्वान् ब्राह्मण पुरोहित जिस राष्ट्र का रक्षक है, वह राष्ट्र न तो कभी पीडित होता है और न हानि पाता है और न जीर्ण होता है ।

५८३. समीहितसिद्ध्यै प्रवृत्तेन ब्राह्मणोऽग्रे कर्तव्यः ।

मृच्छकटिक पृ० ४३४ ॥

इष्ट कार्य की सिद्धि के लिये सबसे आगे ब्राह्मण को रखना चाहिये ।

ब्राह्मण द्वारा पवित्रता–

५८४. पादेभ्यो ब्राह्मणाः पवित्रयन्ति सर्वम् ।

विद्धसालभञ्जिका पृ० ६३ ॥

ब्राह्मण सबको अपने पैरों से ही पवित्र कर देते हैं ।

(१२६) भवितव्यता—

५८५. अभिमुखीष्विव कांक्षितसिद्धिषु व्रजति निर्वृतिमेकपदे मनः ।
मालविकाग्निमित्र पृ० १६२ ॥

अभीष्ट की सफलता के समीप आने पर मन में एक दम शान्ति आ जाती है ।

५८६. अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशा परिणतयो भवन्ति ।
मुद्राराक्षस पृ० १७८ ॥

पुरुषों की सम और विषम अवस्थाओं के परिणाम बिना लक्षित किये ही हो जाते हैं ।

५८७. अवश्यंभवितव्येऽर्थे कः प्रहर्षः । **अविमारक पृ० ४८ ॥**

जो बात अवश्य होनी है, उसके लिये बहुत प्रसन्नता का क्या होना ?

५८८. आगामि सुखं दुःखं वा हृदयं समवस्था कथयति ।
मालविकाग्निमित्र पृ० १३१ ॥

आने वाले सुख या दुःख की बात को हृदय की अवस्था ही बता देती है ।

५८९. न भगवती भवितव्यता अतिक्रमितुं पार्यते ।
तापसवत्सराज पृ० १२० ॥

सामर्थ्यशाली भवितव्यता को लांघा नही जा सकता ।

५९०. न भवन्ति चिरं प्रायः सम्पदो विपदोऽपि वा ।
हनूमन्नाटक ९ २१ ॥

किसी के सुख और दुःख चिरकाल तक बने नहीं रहते ।

५९१. न सर्वदा सर्वस्य सदृशो दशापाकः । **बालरामायण पृ० ४२ ॥**

सबकी दशाओं का परिणाम सदा समान नहीं रहता ।

५९२. प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तोः
सर्वंकषा भगवती भवितव्यतैव ॥ **मालतीमाधव १.२४ ॥**

सामर्थ्यशालिनी होनहार ही सब कुछ करने में समर्थ होकर प्राणी का शुभ या अशुभ करती है।

४६३. **बलवती भवितव्यता।** **चण्डकौशिक पृ० १५० ॥**

होनहार बलवान् होती है।

५६४. **भवितव्यता खलु बलवती।** **अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४०८ ॥**

होनहार निश्चय से बलवान् होती है।

५६५. **भवितव्यतानुविधायीनि इन्द्रियाणि।**
मालविकाग्निमित्र पृ० १६३ ॥

इन्द्रियां होनहार के अनुसार कार्य करती हैं।

५६६. **भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।**
अभिज्ञानशाकुन्तल १.१६ ॥

होनहार के द्वार सर्वत्र होते हैं।

५६७. **भव्यं रक्षति भवितव्यता।** **मुद्राराक्षस ६८ ॥**

होनहार ही होने वाली बात की रक्षा करती है।

(१३०) भ्रातृ—

५६८. **आलिङ्गते भ्रातृगात्रे कवोष्णाः सोऽपि चन्द्रमाः।**
बालरामायण १०.१०० ॥

भाई के शरीर का आलिंगन करने पर चन्द्रमा भी कुछ गरम लगने लगता है।

५६९. **ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः।** **मध्यमव्यायोग १.१८ ॥**

बड़ा भाई पिता के समान होता है।

(१३१) मणिमन्त्रौषधि—

६००. **अचिन्त्यो नाम मणिमन्त्रौषधीनाम्...अनुभावः ।**

अनर्घराघव पृ० १५७ ॥

६०१. **अचिन्त्यो हि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः ।**

रत्नावली पृ० ५६ ॥

मणियों, मन्त्रों और औषधियों का प्रभाव अचिन्त्य है ।

६०२. **अपि चिन्तामणिश्चिन्ता परिश्रममपेक्षते ।**

मालतीमाधव १०.२२ ॥

चिन्तामणि से कार्य कराने के लिये चिन्ता करने का तो श्रम करना ही होता है ।

(१३२) मन

६०३. **तत्सत्यं मनसि स्वस्थे रम्याणां रमणीयता ।**

हनूमन्नाटक १४.२८ ॥

सत्य है कि मन के स्वस्थ होने पर ही रमणीय पदार्थ अच्छे लगते हैं ।

६०४. **दुष्करं खलु परचित्तग्रहणम् ।** **मृच्छकटिक पृ० ३३६ ॥**

दूसरे के मन को वश में करना कठिन है ।

६०५. **न शक्यो मनो जेतुम् ।** **अविमारक पृ० ३४ ॥**

मन को जीतना सम्भव नहीं है ।

(१३३) मनोरथ—

६०६. **को विश्रमो नाम विभ्रष्टमनोरथानाम् ।**

अविमारक पृ० ११५ ॥

नष्ट मनोरथ वालों को विश्राम नहीं मिलता ।

६०७ **दिष्ट्या पात्रे गतो मनोरथः ।** **पद्मप्राभृतक पृ० ५७ ॥**

भाग्य से इसका मन योग्य व्यक्ति में गया है ।

६०८. **मनोरथाः नाम तटप्रपाताः ।** **अभिज्ञानशाकुन्तल ६.१० ॥**

मनोरथ तो नदी के तट के समान गिर जाने वाले होते हैं ।

६०९. **रमणीयतरः खलु प्राप्तमनोरथानां विनिपातः ।**

प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ११५ ॥

मनोरथों को पूरा प्राप्त करने के वाद आने वाली विपत्ति रमणीय ही है ।

(१३४) मनोरथमोदक—

६१०. **भ्रष्टो राजा, क्षुधाक्रान्तो ब्राह्मणः, अविनीतहृदया बालरण्डा, विरहितश्च मानुषो मनोरथमोदकैरात्मानं विडम्बयति ।**

कर्पूरमञ्जरी पृ० १६२ ॥

राज्य से भ्रष्ट राजा, भूख से पीडित ब्राह्मण, बालविधवा और विरही मनुष्य ये मनोरथ रूपी लड्डुओं से अपना मन बहलाने की विडम्बना करते हैं ।

(१३५) मन्त्री—

६११. **अपराधं विना मन्त्री प्रभुणा पीडितोऽपि सन् ।**
न वैरूप्यं क्वचिद् याति तदामुष्मिकमुच्यते ॥

हनूमन्नाटक ६.२६ ॥

बिना किसी अपराध के भी राजा से पीडित हुआ मन्त्री जब कभी कुपित न हो तो ऐसे मन्त्री को आमुष्मिक कहते हैं ।

६१२. मतिर्विपश्चितां मन्त्री रतिर्मन्त्री विलासिनाम् ।
पराक्रमैकसाराणां मानिनां त्वसिवल्लरी ॥

हनूमन्नाटक ६.१३ ॥

विद्वानों का मन्त्री बुद्धि है, विलासियों का मन्त्री प्रणय-विलास है, पराक्रमी तथा स्वाभिमानी व्यक्तियों का मन्त्री खड्ग है ।

६१३. सुखिनः परसौख्येन परदुःखेन दुःखिताः ।
जायन्ते कवयः काव्ये नयतन्त्रे च मन्त्रिणः ॥

बालरामायण ५.३ ॥

दूसरे के सुख में सुखी होने वाले और दूसरे के दुःख में दुःखी होने वाले दो ही प्रकार के व्यक्ति होते हैं—काव्यों में तो कवि और नीतिशास्त्र में मन्त्री ।

(१३६) मन्दाकिनी—

६१४. सर्वदेवताभ्यः प्रकृष्टतममैश्वर्यं मन्दाकिन्याः

उत्तररामचरित पृ० २१३ ॥

मन्दाकिनी (गंगा) का ऐश्वर्य सभी देवताओं से उत्कृष्ट है ।

(१३७) महान् पुरुष—

महापुरुष का आश्रय-

६१५. प्रायो यत्किञ्चिदपि प्राप्नोति उत्कर्षमाश्रयान्महतः ।

प्रियदर्शिका ३.१ ॥

महापुरुषों का आश्रय लेने से मनुष्य जो कुछ भी हो, प्राप्त कर लेता है ।

६१६. **शतभङ्गीभवद्भद्रा महतां हि प्रसत्तयः ।**

बालरामायण ४.२८ ॥

महान् व्यक्तियों के सामीप्य सौ गुना कल्याणकारी होते हैं ।

महापुरुष का चरित्र–

६१७. अहह **महतां निस्सीमानश्चरित्रविभूतयः ।**

बालरामायण ७.४० ॥

महान् व्यक्तियों के चरितों के ऐश्वर्य निस्सीम तथा आश्चर्यजनक होते हैं ।

६१८. **उचितकारित्वेऽश्रुतशिक्षितानि महाभागचरितानि ।**

बालरामायण पृ० ३७४ ॥

महान् पुरुषों के चरित बिना सुने तथा बिना सीखे हुये भी उचित कार्य करते हैं ।

६१९. **पूर्णत्वादतिरिच्यते हि महतस्तुच्छस्य दुर्लङ्घ्यता ।**

अनर्घराघव ७.८४ ॥

परिपूर्ण होने से महान् व्यक्ति का तुच्छ व्यक्ति उल्लंघन नही कर सकता ।

महापुरुषों का प्रेम–

६२०. **जयन्ति खलु महतां विसंवादिन्यः प्रत्यायिन्यः कल्याणाः प्रीतयः ।**

मालतीमाधव पृ० ४७२ ॥

महान् व्यक्तियों के अनुकूल रहने वाले, विश्वास दिलाने वाले और कल्याण करने वाले प्रेम सबसे उत्कृष्ट हैं ।

महापुरुष का हृदय और मन–

६२१. **आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।**

स्वप्नवासवदत्त पृ० ७८ ॥

महापुरुषों के हृदय शास्त्रों के अनुसार कार्य करते हैं, और सरलता से समझाये जा सकते हैं ।

६२२. बज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥
उत्तररामचरित २.७ ॥

समय पर वज्र से भी कठोर और अन्य समय पुष्पों से कोमल लोकोत्तर महापुरुषों के मनों को कौन जान सकता है ?

महापुरुष की बाह्य आकृति–

६२३. अनाकलितसत्वसारसम्भारभीषणरमणीयाकृतयो हि महात्मानः ।
बालरामायण पृ० ३६ ॥

महापुरुषों की आकृति पराक्रम से भीषण होते हुये भी रमणीय होती है ।

६२४. उत्तुङ्गघोणमुरुकन्धरमुन्नतांसंमंसावलम्बिमणिकर्णिककर्णपाशम् ।
आजानुलम्बितभुजाञ्चितकाञ्चनाभम् । तपतीसंवरण १.२॥

महापुरुषों की बाह्य आकृति इस प्रकार होती है–ऊँची उठी हुई नासिका, विशाल ग्रीवा, ऊँचे उठे कन्धे, कन्धों तक लम्बी कर्णपालिका, घुटनों तक लम्बी भुजायें और स्वर्ण के समान चमकता शरीर ।

६२५. कठोरपारावतकण्ठमेचकं वपुर्वृष स्कन्धसुबन्धुरंसयोः ।
प्रसन्नसिंहस्तिमितं च वीक्षितं ध्वनिश्च माङ्गल्यमृदङ्गमांसलः ॥
उत्तररामचरित ६.२५ ॥

महापुरुष का शरीर युवा कबूतर के कण्ठ के समान श्यामल, कन्धे बैल के कन्धों के समान मजबूत, प्रसन्न सिंह की दृष्टि के समान शान्त दृष्टि और मृदंग की ध्वनि के समान मंगलदायक ध्वनि होती है ।

६२६. वृषस्कन्धं मत्तद्विरदकरपीनायतभुजं
वपुर्व्यूढोरस्कं ननु भुवनरक्षाक्षममिदम् ॥

महापुरुषों के कन्धे बैलों के कन्धे के समान विशाल, भुजायें मत्त हाथी की मोटी लम्बी सूंड के समान और वक्षः स्थल विशाल होता है, जो संसार की

रक्षा करने में समर्थ है।

६२७. **व्यायामकठिनः प्रांशुः कर्णान्तायतलोचनः।**
व्यूढोरस्को महाबाहुः। **कुन्दमाला ३.१५॥**

महापुरुषों का शरीर व्यायाम करने से कठोर तथा लम्बा होता है, नेत्र कानों तक फैले विशाल होते है, वक्षः स्थल विस्तीर्ण होता है और भुजायें लम्बी होती हैं।

महापुरुष की वाणी और व्यवहार—

६२८. **प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः**
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः।
पुरो वा पश्चाद्वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते॥
उत्तररामचरित २.२॥

महापुरुषों का व्यवहार प्रिय होता है, वाणी विनीत और मधुर तथा नियन्त्रित होती है, स्वभाव से ही कल्याण करने वाली बुद्धि होती है और परिचय प्रशंसनीय होता है। जो कुछ वे कहते हैं, वह चाहे प्रत्यक्ष हो या परोक्ष हो, एकसा होता है।

महापुरुष की सेवा—

६२९. **असतामपि महापुरुषशुश्रूषा किमपि कामदुघा।**
बालरामायण पृ० ८२॥

महापुरुषों की सेवा असज्जनों की भी कामनाओं को पूरा करती है।

महापुरुष द्वारा कार्यारम्भ—

६३०. **प्रारब्धमुतमजनाः न परित्यजन्ति।** **मुद्राराक्षस २.१७॥**

उत्तम व्यक्ति प्रारम्भ किये हुये कार्य का परित्याग नहीं करते।

६३१. **महान्तः खलु महतामारम्भाः।** **पादताडितक पृ० २४१॥**

महान् व्यक्ति महान् कार्यों को प्रारम्भ करते है।

(१३८) महिमा—

६३२. **प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात्प्रतिपद्यते हि जनः।**

अभिज्ञानशाकुन्तल ६.३१ ॥

क्षुब्ध होने पर मनुष्य प्रायः अपनी महिमा को प्राप्त करता है।

(१३९) माता—

६३३. **दुहितुः प्रदानकाले दुःखशीला हि मातरः।**

प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ५० ॥

कन्याओं का विवाह करते समय माताओं को बहुत दुःख होता है।

६३४. **नमस्कृत्यवदामि त्वां यदि पुण्यं मया कृतम्।**
अन्यस्यामपि जात्यां मे त्वमेव जननी भव ॥ उरुभङ्ग १.५० ॥

मैं तुमको नमस्कार करके कह रहा हूं कि यदि मैने पुण्य किया है, तो दूसरे जन्म में भी तुम मेरी माता होना।

६३५. **माता किल मनुष्याणां देवतानां च देवतम्।**

मध्यमव्यायोग १·३७ ॥

मनुष्यों के लिये माता देवताओं की भी देवता है।

६३६. **सहस्रं हि पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते।**

बालरामायण ४.३० ॥

माता का गौरव पिता की अपेक्षा हजार गुना अधिक होता है।

६३७. **स्नेहदुर्बलं हि मातृहृदयम्। प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० २२ ॥**

माता का हृदय स्नेह के कारण दुर्बल होता है ।

(१४०) मित्र और मित्रता—

अज्ञात व्यक्ति से मैत्री

६३८. **अतःपरीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात्संगतं रहः ।**
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ।।

अभिज्ञानशाकुन्तल ५.२४ ।।

एकान्त में मिलन परीक्षा करके ही करना चाहिये । अज्ञात हृदत वालों के प्रति इस प्रकार मित्रता करना शत्रुता में ही परिणत होता है ।

मित्र का अवश्य होना–

६३९. **चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम् ।** **मृच्छकटिक १.८ ।**

जिसका मित्र न हो, उसका घर सदा सूना है ।

मित्र का कार्य–

६४०. **अवश्यं भवितव्ये विनाशे मित्रकार्य समुद्वहमानो विनाश-मुद्वहामि ।** **मुद्राराक्षस पृ० १६६**

मृत्यु अवश्य होनी है, अतः मित्र के कार्य का निर्वाह करने के लिये मरना ठीक है ।

६४१. **त्वरानुष्ठेयं मित्रकार्यम् ।** **उभयाभिसारिका पृ० १३५ ।।**

मित्र का कार्य शीघ्रता से करना चाहिये ।

६४२. **न हि बुद्धिगुणेनैव सुहृदामर्थदर्शनम् ।**
कार्यसिद्धिपथः सूक्ष्मः स्नेहेनाप्युपलभ्यते ।।

मालविकाग्निमित्र ४.६ ।।

मित्र के कार्य को केवल बुद्धि द्वारा ही पूरा नहीं किया जाता। कार्य की सिद्धि का मार्ग सूक्ष्म है और उसको स्नेह से भी प्राप्त किया जाता है।

६४३. **नूनमनिच्छतोऽपि छद्मान्यसत्ये कर्मण्यवतारयन्ति अतिगुरूणि मित्रकार्याणि। सुभद्राधनञ्जय पृ० ४७॥**

अति महान् मित्र के कार्य न चाहते हुये भी मुझको कपट रूप असत्य कार्य में उतार रहे है।

मित्र का स्नेह–

६४४. **नमः सर्वकार्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय। मुद्राराक्षस २०६॥**

सभी कार्यों को पूरा करने वाले मित्र के स्नेह के लिये नमस्कार है।

६४५. **प्रवृत्तप्रतिभास्रोतोविघातिनं सुप्रियमपि सुहृदमभ्यसूयन्ते कवयः। पद्मप्राभृतक पृ० १०॥**

अति प्रिय मित्र भी यदि प्रतिभा के स्रोत को रोके, तो कवि उसके प्रति असूया करते हैं।

६४६. **प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षूंषी न दारुणाः शराः। अभिज्ञानशाकुन्तल ६.२६॥**

मित्रों पर सज्जनों की कृपा युक्त सौम्य दृष्टियां पड़ती हैं, कठोर बाण नहीं।

मित्र के कथन का उल्लंघन न करना–

६४७. **अनतिक्रमणीयं च सुहृद्वाक्यम्। महावीरचरित पृ० १६४॥**

६४८. **अनतिक्रमणीयं सुहृद्वाक्यम्। अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० १६२॥**

मित्र के कथन का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

मित्र के विरह में व्यथा–

६४९. भारो कायः जीवितं वज्रकीलं काष्ठा शून्याः निष्फलानीन्द्रियाणि ।
कष्टः काले मां प्रति त्वत्प्रयाणे शान्तालोकः सर्वतो जीवलोकः ।।
मालतीमाधव ९ ३७ ।।

मित्र का विरह होने पर शरीर भार प्रतीत होता है जीवन कठोर कील प्रतीत होता है, दिशायें सूनी लगती है, सारी इन्द्रियाँ निष्फल होती है, समय कष्टकर लगता है और सारे संसार का सुख शान्त लगता है ।

मित्रता–

६५०. साप्तपदीनं सख्यम् । बालरामायण पृ० २१ ।।

सात कदम साथ चलने पर मित्रता हो जाती है ।

मित्र द्वारा गलत मार्ग का निवारण–

६५१. मज्जमानमकार्येषु पुरुषं विषयेषु वै ।
निवारयति यो राजन् स मित्रं रिपुरन्यथा ।।
अभिषेकनाटक ६.२२ ।।

जो व्यक्ति पुरुष को बुरे मार्ग से रोकता है, वही मित्र है । अन्यथा शत्रु है ।

(१४१) मृगया—

मृगया की निन्दा—

६५२. अरण्यचङ्क्रमणकण्टकशरविर्दनसमविषमलङ्घनबुभुक्षा पिपासादोषसङ्कुलबहुप्रत्यवायं यदि मृगव्यं विनोदोपायः, तत्किं पुनस्त आयासस्थानं भविष्यति । चण्डकौशिक पृ० ३९ ।।

जंगलों में घूमना, कांटों रूपी बाणों से पीडित होना, ऊंची-नीची भूमि को लांघना भूख-प्यास आदि दोषों से भरे अनेक विघ्नों से युक्त शिकार खेलने को यदि मन बहलाने का उपाय माना जावे, तो इससे अधिक पीडा देने वाला और क्या होगा ?

मृगया की प्रशंसा—

६५३. क्षात्रं हि मृगयारसम् । बालरामायण ७.८६ ॥

क्षत्रियों को शिकार खेलना आनन्ददायक है ।

६५४. खिन्नं विनोदयति मानसमातनोति स्थैर्यं चले वपुषि लाघवमादधाति ।
उत्साहबुद्धिजननीं रणकर्मयोग्यां राज्ञां मुधैव मृगयां व्यसनं वदन्ति ॥ चण्डकौशिक १.२६ ॥

शिकार खेलना दुःखी व्यक्ति का मन बहलाता है, मन को विशाल करता है, हिलते लक्ष्यवेध को सिखाता है, शरीर को हलका करता है, युद्ध के योग्य उत्साह और बुद्धि को बनाता है । राजाओं के लिये शिकार खेलना व्यसन नही है ।

६५५. मृगया च राज्ञां धर्म एव । महावीरचरित पृ० २०४ ॥

शिकार खेलना राजा का धर्म ही है ।

६५६. मेदश्छेदकृशोदरं लघु भवत्युत्थानयोग्यं वपुः
सत्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयोः ।
उत्कर्षः स च धन्विनां यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्येव व्यसनं वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥
अभिज्ञानशाकुन्तल २.५ ॥

शिकार खेलने से चर्बी कट कर पेट पतला हो जाता है, शरीर हलका होकर कार्यों के योग्य हो जाता है, भय तथा क्रोध से पीडित प्राणियो के मन के विकार को पहचानना आ जाता है, हिलते लक्ष्यों पर बाणों का निशाना साधना आ जाता है । शिकार खेलने को मिथ्या ही व्यसन कहते हैं । इस प्रकार का विनोद और नहीं है ।

(१४२) मृत्यु की अनिवार्यता—

६५७. कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति।
एवं लोकः तुल्यधर्मा वनानां काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥
स्वप्नवासवदत्त ६.१० ॥

मृत्यु का समय उपस्थित होने पर कौन किसकी रक्षा कर सकता है। रस्सी कट जाने पर घड़े को कोई रोक नही सकता। यह संसार तो वनों के समान है, जो समय समय पर कट जाता है और समय पर पुनः उग आता है।

(१४३) मोक्ष—

६५८. ममापि च क्षपयतु नीललोहितः पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।
अभिज्ञानशाकुन्तल ७.३५ ॥

सर्वव्यापक शक्ति वाले स्वयंभू शिव मेरे पुनर्जन्म को नष्ट करें।

(१४४) यज्ञ—

६५९. अविघ्नमस्तु यज्ञानाम्। कुन्दमाला ६ ३९ ॥

यज्ञों के विघ्न नष्ट हों।

६६०. इष्टैस्त्रैविष्टपानां विदधतु विधिवत्प्रीणनं विप्रमुख्याः।
प्रियदर्शिका ४.११ ॥

ब्राह्मण लोग शास्त्रीय विधियों द्वारा यज्ञ करके देवताओं को प्रसन्न करें।

६६१. हुतं च दत्तं च तथैव तिष्ठति। कर्णभार १.२२ ॥

आहुति और दान वैसे ही स्थिर रहते हैं।

(१४५) यज्ञोपवीत—

६६२. नवगुणं यज्ञोपवीतम् । हनूमन्नाटक १.२० ॥

६६३. यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम् । मृच्छकटिक पृ० १२० ॥

यज्ञोपवीत ब्राह्मणों का महान् उपकरण है ।

(१४६) यम—

६६४. प्रणमत यमस्य चरणौ किं कार्यं दैवतैरन्यैः ।
एष खल्वन्यभक्तानां हरति जीवं परिस्फुरन्तम् ॥
मुद्राराक्षस १ १७ ॥

यम के चरणों में प्रणाम करो । अन्य देवताओं से क्या लेना है ? यह यम अन्य देवताओं के भक्तों के फड़कते हुये प्राणों का अपहरण कर लेता है ।

(१४७) यश—

६६५. अहो मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वे । वेणीसंहार ३.६ ॥

प्राणी को अवश्य ही मरना है, अतः यश को व्यर्थ ही मलिन नहीं करना चाहिये ।

६६६. उदकतैलवृत्त्या विकसितं यशः । पादताडितक पृ० २१० ॥

जल में तेल के फैलने के समान यश विकसित होता है ।

६६७. जित्वा तु लभते यशः । कर्णभार १.२ ॥

युद्ध में जीत कर यश प्राप्त होता है।

६६८. **पटच्चरीभूता खल्वियं पुरातनी कीर्तिपताका।**

अनर्घराघव पृ० २१८ ॥

पुरानी होकर यह यश रूपी पताका जीर्ण हो गई है। यश की वृद्धि के लिये निरन्तर अच्छे कार्य करते रहना चाहिये।

६६९. **यशोधनमायोधनं शूराणम्।** **बालरामायण पृ० ४५६ ॥**

वीर पुरुषों के लिये युद्ध करना ही यश रूपी धन है।

६७०. **युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्याः तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः।**

उत्तररामचरित १.११ ॥

राजा को प्रजा का अनुरंजन करने से ही यश मिलता है। वही उसका परम धन है।

६७१. **व्यतिकरितदिगन्ता श्वेतमानैर्यशोभिः**
सुकृतविलसितानां स्थानमूर्जस्वलानाम्।
अगणितमहिमानं केतनं मङ्गलानां
कथमिव भुवनेऽस्मिन् त्वादृशाः सम्भवन्ति ॥

मालतीमाधव २.९ ॥

उज्ज्वल कीर्तियों से दिशाओं को व्याप्त करने वाले, तेजस्वी पुण्य कार्य करने वाले, अतुलित महिमा वाले और मंगलों के प्रतीक, इस प्रकार के व्यक्ति ससार में कैसे उत्पन्न होते हैं।

(१४८) याचना—

६७२. **अर्थित्वादविश्रान्तः पृच्छत्येव हि कार्यवान्।**

पञ्चरात्र पृ० ७२ ॥

जिसको अपना कार्य हो, वह याचक होने से निरन्तर पूछता ही रहता है ।

६७३. **याञ्चा परं दैन्यभूः । बालभारत १.४, बालरामायण १.१० ॥**

याचना परम दैन्य को उत्पन्न करती है ।

(१४९) युद्ध—

६७४. **युद्धं नाम अनियतभद्रम् । .वीणावासवदत्त पृ० ४५ ॥**

युद्ध में कल्याण होना निश्चित नही है ।

६७५. **समरावर्जितानां रत्नानामिष्टजनसम्भोगः प्रीतिमुत्पादयति ।**
प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ६६ ॥

युद्ध में जीते गये पदार्थो का उपभोग जब प्रिय जन करते हैं, तो इससे प्रसन्नता उत्पन्न होती है ।

६७६. **हतोऽपि लभते स्वर्गं जित्वालतु लभते यशः ।**
उभे बहुमते लोके नास्ति निष्फलता रणे ॥
कर्णभार १.१२ ॥

युद्ध में मारे जाने पर स्वर्ग मिलता है और जीत कर यश प्राप्त होता है । संसार में दोनों ही अभीष्ट है । युद्ध करना निष्फल नही है ।

(१५०) युवतियों के गुरण—

६७७. **कान्तं रूपं यौवनं चारु शीलं दानं दाक्षिण्यं वाक् च सामोपपन्ना ।**
यं प्राप्यैते सद्गुणा भान्ति सर्वे लोके कामिन्यः केन तस्य प्रसाद्याः ॥ उभयाभिसारिका श्लोक ५ ॥

कमनीय रूप, यौवन, सुन्दर स्वभाव, दान, अनुकूलता, प्रिय वाणी, ये उत्तम गुण जिन युवतियों में होते हैं, वे सबको प्रसन्न करती हैं।

(१५१) यौवन—

यौवन की कमनीयता—

६७८. **विधत्ते सोल्लेखं कतरदिह नाङ्गं तरुणिमा।**

विद्धसालभञ्जिका पृ० १६ ॥

तारुण्य युवतियों के प्रत्येक अंग को सौन्दर्य से भर देता है।

यौवन में अस्थिरता—

६७९. **नद्यश्च खलमैत्री च लक्ष्मीश्च नियतिर्द्विषाम्।**
सुकुमाराश्च वनिता राजन्नस्थिरयौवनाः ॥

हनूमन्नाटक ६.१७ ॥

नदियां, दुष्टों की मित्रता, लक्ष्मी, शत्रुओं का भाग्य, कोमल वनिता, इन सबका यौवन अस्थिर होता है।

यौवन में उच्छृंखलता—

६८०. **पिता नाम खलु सयौवनस्य पुरुषस्य मूर्तिमान् शिरोरोगः।**

धूर्तविटसंवाद पृ० ७१ ॥

युवा पुरुष के पिता शरीरधारी शिरोरोग है।

यौवन में विजयाभिलाषा—

६८१. **यूनोर्मनस्तदपि वाञ्छति जेतुमेव।** **अनर्घराघव ७.११५ ॥**

युवक का मन विजय की ही अभिलाषा करता है।

यौवन में सौन्दर्य का निवास—

६८२. अधिदेवतेव वसति तथापि खलु तारुण्ये लक्ष्मीः ।

कर्पूरमञ्जरी २.४८ ॥

यौवन की अवस्था में सौन्दर्य अधिष्ठातृ देवता के समान निवास करता है ।

(१५२) राक्षस-माया—

६८३. बहुमायाश्छलयोधिनः राक्षसाः । अभिषेक नाटक पृ० ७४ ॥

राक्षस लोग बहुत मायावी होते हैं और छल से युद्ध करते हैं ।

(१५३) राजा—

राज-भय–

६८४. स्मरतापि भयं राज्ञा भयं न स्मरतादपि ।
उभाभ्यामपि गन्तव्यो भयादप्यभयादपि ॥

बालचरितम् २.१३ ॥

स्मरण करते हुये राजा से भय है और न स्मरण करते हुये भी राजा से भय है । चाहे हो या न हो, राजा के पास जाना ही पड़ता है ।

राज-शासन–

६८५. ऊषरेष्वपि शस्यं स्याद् यत्र राजा युधिष्ठिरः ।

पञ्चरात्र १.४६ ॥

जहाँ राजा युधिष्ठिर हों, वहाँ ऊसर में भी अन्न हो जाता है । अच्छे गुणी राजा के शासन में प्रभूत अन्न होते हैं और प्रजा सुखी रहती है ।

६८६. एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ।

प्रतिमानाटक ३.२३ ॥

राजा के बिना प्रजा का विनाश हो जाता है।

६८७. राजा चेत्पुरुषं न शास्ति तदयं प्राप्तः प्रजाविप्लवः।

महावीरचरित ३.३५ ॥

यदि राजा पुरुषों का शासन न करें तो प्रजा में विप्लव हो जाता है।

राजा का कर्तव्य और धर्म–

६८८. अविश्रमोऽयं लोकतन्त्राधिकारः। अभिज्ञानशाकुन्तल ३३२ ॥

राज्य-प्रशासन में लगे राजा को विश्राम नही है।

६८९. असाध्यमन्यथादोषं परिच्छिद्य शरीरिणः।
यथा वैद्यस्तथा राजा शस्त्रपाणिर्भविष्यति ॥

महावीरचरित ४.२३ ॥

पुरुषों के असाध्य और अन्य उपायों से शान्त न होने वाले दोष को देख कर राजा को वैद्य के समान शस्त्र हाथ में लेना चाहिये।

६९०. आपन्नस्य विषयनिवासिनो जनस्यार्तिहरेण राज्ञा भवितव्यम्।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २५१ ॥

देश में रहने वाले विपत्तिग्रस्त प्रजाजनों की पीडा राजा द्वारा दूर की जानी चाहिये।

६९१. आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।

अभिज्ञानशाकुन्तल १.११ ॥

राजा का शस्त्र पीडितों की रक्षा के लिये होता है, निरपराध पर प्रहार के लिये नहीं।

६९२. त्वयि तु परिसमाप्तं बन्धुकृत्यं प्रजानाम्।

अभिज्ञानशाकुन्तल ५.८ ॥

राजा सभी प्रकार से प्रजा का बन्धु होता है।

६६३. **नियमयसि कुमार्गप्रस्थितानातदण्डः**
प्रशमयसि विवादं कल्पसे रक्षणाय । अभिज्ञानशाकुन्तल ५.८ ।।

राजा का कर्तव्य है कि वह बुरे मार्ग पर चलने वालों को नियन्त्रित करे, विवादों को शान्त करे और प्रजा की रक्षा करे ।

६६४. **परचक्रै रनाक्रान्ता धर्मसङ्कुरवर्जिता ।**
भूमिः भर्तारमापन्नं रक्षिता परिरक्षति ।।
प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० १.६ ।।

जो राजा राज्य की बाह्य आक्रमणों से रक्षा करता है और धर्म का पालन करता है, ऐसे राजा की रक्षा यह राष्ट्रभूमि स्वयं करती है ।

६६५. **युक्तः प्रजनामनुरञ्जने स्याः यस्माद्यशो ऽत्परमं धनं वः ।**
उत्तररामचरित १.११ ।।

प्रजा का अनुरंजन ही राजा का परम कर्तव्य है । उसी से उसको यश मिलता है और वही उसका परम धन है ।

६६६. **विशुद्धौ चेत्पापं चरसि न सहन्ते नृपतयः ।**
महावीरचरित ३.३६ ।।

प्रजाजनों द्वारा किये गये पाप को राजा सहन नही करते ।

६६७. **स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।**
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ।।
उत्तररामचरित १.१२ ।।

प्रजाजनों का अनुरंजन करने के लिये स्नेह को, दया को, सुख को और सीता को भी छोड़ते हुये मुझको पीडा नहीं है। प्रजा के कल्याण के लिये राजा सर्वस्व का भी परित्याग कर सकता है ।

६६८. **स्वसुखनिरभिलाषः खिद्यसे लोकहेतोः ।**
अभिज्ञानशाकुन्तल ५.७ ।।

राजा को अपने सुख की अभिलाषा नहीं होती। वह प्रजाजनों का कल्याण करने के लिये ही कष्ट उठाता है।

राजा का सेव्यत्व–

६९९. अग्नय इव नात्यासन्नेन नातिदूरस्थितवता ननु सुखसेव्याः राजानः। वीणावासवदत्त पृ० २६ ॥

राजा अग्नि के समान हैं। इनकी सेवा करते हुये न तो बहुत दूर रहना चाहिये और न बहुत समीप।

७००. अवसरोपसर्पणीयाः राजानः। अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३८४ ॥

राजाओं के समीप अवसर देख कर जाना चाहिये।

७०१. जानन्ति तन्त्रयुक्तिं यथास्थितमण्डलमभिलिखन्ति।
ये मन्त्ररक्षणपरास्ते सर्पनराधिपावनुचरन्ति ॥
मुद्राराक्षस २.१ ॥

जो तन्त्रों (राजशासन तथा तन्त्रविद्या) की युक्ति जानते हैं तथा स्थिति के अनुसार मण्डल (राष्ट्र तथा सर्प को पकड़ने का घेरा) का अभिलेखन कर सकते हैं और मन्त्र (राजा के साथ परामर्श तथा सर्पविष उतारने का मन्त्र) की रक्षा कर सकते हैं, वे राजा और सर्प की सेवा करते हैं।

७०२. प्रसादसुमुखोऽपि राजा दुर्विज्ञाप्यः सेवकैः, किं पुनः कोपभीषणः।
कुन्दमाला पृ० १८३ ॥

प्रसन्न राजा से भी कोई निवेदन करना सेवकों के लिये कठिन होता है, क्रोध से भयानक होने पर तो कहना ही क्या है।

राजा का स्वभाव–

७०३. अकरुणाः खल्वीश्वराः। आश्चर्यचूडामणि पृ० १३३,
अभिषेकनाटक पृ० ४०, स्वप्नवासवदत्त पृ० ८७, १८५ ॥

राजा लोग निश्चय से करुणा से रहित होते हैं।

७०४. **बहुवल्लभाः खलु राजानः।** **अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २५४, चण्डकौशिक पृ० २१**

राजाओं की अनेक प्रेमिकायें होती हैं।

७०५. **मानशरीरा हि राजानः।** **उरुभङ्ग पृ० ५४ ॥**

राजा अति स्वाभिमानी होते है।

राजा के अनुसार प्रजा का होना–

७०६. **यच्छीलः स्वामी तच्छीलास्तस्य प्रकृतयः।**

अनर्घराघव पृ० ३०१ ॥

राजा का जैसा स्वभाव होता है, प्रजाओं का भी वैसा हो जाना है।

७०७. **राजा कालस्य कारणम्।** **विक्रमोर्वशीय पृ० २१७ ॥**

राजा ही समय का कारण है।

राजा के आदेश का पालन–

७०८. **अविकल्पितमनुष्ठेयानि राजशासनानि।**

सुभद्राधनञ्जय पृ० १३७ ॥

राजा के आदेशों का पालन बिना हिचके करना चाहिये।

७०९. **क्षितिपालानामाज्ञा सर्वत्रगा स्वयम्।** **हनूमन्नाटक ११.१९ ॥**

राजाओं का आदेश स्वयं सब स्थानों पर जाता है।

७१० **दुर्वारदिनिपातोऽयं भर्तृराज्ञाव्यतिक्रमः।** **चण्डकौशिक ५.१६ ॥**

राजाओं के आदेशों का उल्लघन करना बहुत कठिन है तथा विपत्तिजनक है।

७११. **नाज्ञाभङ्गं सहन्ते नृपतयस्त्वादृशाः सार्वभौमाः।**

मुद्राराक्षस ३.२२

सार्वभौम राजा आज्ञा के भंग को सहन नहीं करते ।

७१२ **परेरपरिभूताज्ञस्त्वमिव प्रभुरुच्यते ।** **मुद्राराक्षस ३.२३ ॥**

जिसकी आज्ञा का दूसरे व्यक्ति उल्लघंन नहीं कर सकते, वही प्रभु कहलाता है ।

राजा को कर्तव्य-पालन में दुःख—

७१३. **राज्ञां तु चरितार्थता दुःखोत्तरैव ।**

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३६६ ॥

राजाओं को सफल होने पर भी उत्तरोत्तर दुःख ही मिलता है ।

राजा-चक्रवर्ती के लक्षण—

७१४. **छत्राकारमिदं शिरः पृथुललाटान्तं विशालेक्षणं**
चक्राङ्कौ चरणौ करौ सकमलावाजानुलम्बौ भुजौ ।
क्षामं मध्यमुरो विशालमुदरं तुच्छं कटिः पीवरा
नूनं भूपकुलाङ्कुरः शिशुरयं साम्राज्यचिह्नाङ्कितः ॥

चण्डकौशिक ५.८ ॥

चक्रवर्ती राजपुत्र का बाह्यरूप इस प्रकार का कहा गया है—सिर छत्र के आकार का, विशाल माथा, बड़े नेत्र, चक्र से अंकित चरण, कमल से अंकित हाथ, घुटनों तक लम्बी भुजाये, क्षीण कटिप्रदेश, विशाल वक्षःस्थल, पतला पेट और मांसल कटि ।

७१५. **जालग्रथिताङ्गुलिः करः ।** **अभिज्ञानशाकुन्तल ७.१५ ॥**

चक्रवर्ती राजा का हाथ जाल के समान गुंथी हुई अंगुलियों वाला होता है ।

(१५४) राजा के सेवक के गुण—

७१६. **प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिताः येषां गुणाः भूतये**

ते भृत्याः नृपतेः कलत्रमितरे सम्पत्सु चापत्सु च ।।

मुद्राराक्षस १.१४ ।।

जिन सेवकों में बुद्धि, पराक्रम और भक्ति ये तीनों गुण एक साथ होते हैं, वे ही राजा का भला कर सकते है। शेष तो सुखों और दुःखों में स्त्रियों के समान हैं।

(१५५) राजा की तीन शक्तियां—

७१७. उत्साहमन्त्रप्रभुशक्तिभिरलंभूष्णुः। अनर्घराघव ५.५ ।।

राजा को उत्साहशक्ति, मन्त्रशक्ति और प्रभुशक्ति इन तीन शक्तियों से आभूषित होना चाहिये।

(१५६) राज्य—

७१८. नातिश्रमापनयनाय यथा श्रमाय राज्यं स्वहस्तधृतदण्डमिवातपत्रम्। अभिज्ञानशाकुन्तल ५.६ ।।

जिस प्रकार अपने हाथ में पकड़ा हुआ छाता धूप को उतना दूर नहीं करता, जितना थकावट उत्पन्न करता है, उसी प्रकार राजा को शासन करते हुये सुख उतना नहीं मिलता, जितना दुःख मिलता है।

७१९. राज्यं नाम नृपात्मजैः सहृदयैर्जित्वा रिपून् भुज्यते
तल्लोके न तु याच्यते न हि पुनर्दीनाय वा दीयते ।।

दूतवाक्य १.२४ ।।

सहृदय राजपुत्र शत्रुओं को जीत कर राज्य का उपभोग करते हैं। उसको न तो मांगा जाता है और नाहीं दीन याचक के लिये दान किया जाता है।

७२०. राज्यं नाम मुहूर्तमपि नोपेक्षणीयम् ।

प्रतिमानाटक पृ० १२३ ॥

राज्य की क्षण भर के लिये भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ।

(१५७) रात्रि-भय—

७२१. बहुदोषा हि शर्वरी । **मृच्छकटिक १.५८ ॥**

रात्रि बहुत से दोषों से युक्त होती है ।

७२२. व्यवहारेष्वसाध्यानां लोके वा प्रतिरज्यताम् ।
प्रभाते दृष्टदोषाणां वैरिणां रजनीभयम् ॥

प्रतिज्ञायौगन्धरायण ३.३ ॥

जो व्यवहार से वश में नहीं आते, लोगों से द्वेष करते है, और प्रातः होने पर जिनके दोष प्रकट होते हैं, उनकी रात्रि भययुक्त होती है ।

(१५८) लिपिक—

७२३. वेश्यालिपिकारस्य छिद्रप्रहारित्वात् तुल्यमुभयम् ।

धूर्तविटसंवाद पृ० १६ ॥

वेश्या और लिपिक दोनों छिद्र देख कर प्रहार करते हैं ।

[१५९] लोक—

७२४. अति दुर्जनः खलु लोकः । **प्रियदर्शिका पृ० ६८ ॥**

संसार (लोक) बहुत दुष्ट होता है ।

७२५. किन्तु लोको निरङ्कुशः । **कुन्दमाला १.१३ ॥**

संसार (लोक) नियन्त्रण मे रहित होना है ।

(७२६.) **तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां**
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥

अभिज्ञानशाकुन्तल ४.२ ॥

दो तेजों, चन्द्रमा और सूर्य की एक साथ विपत्ति और उन्नति सूचित करती है कि यह लोक अपनी विभिन्न दशाओं में नियन्त्रित किया जाता है ।

७२७. **विचित्रः खल्वयं जीवलोकः । चण्डकौशिक पृ० ६२-६३ ॥**

यह जीवलोक विचित्र ही है ।

[१६०] लोकव्यवहार—

७२८. **अत्यादरः शङ्कनीयः । मुद्राराक्षस पृ० ३० ॥**

वहुत अधिक आदर शंका को उत्पन्न करना है ।

७२९. **अनतिक्रमणीयं लोकवृत्तम् । वेणीसंहार पृ० २६६ ॥**

लोक-व्यवहार का उल्लंघन नही करना चाहिये ।

७३०. **एष लोकव्यवहारः सर्वोऽपि नववरः लज्जातुरो भवति ।**

मालविकाग्निमित्र १४६ ॥

लोक-व्यवहार की बात है कि नये वर को वहुत लज्जा लगती है ।

७३१. **ओदकान्तं स्निग्धो जनोऽनुगन्तव्यः ।**

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३७८ ॥

स्नेही जन को विदा करने के लिये जल के समीप तक अनुगमन करना चाहिये ।

७३२ **कार्यं कार्यान्तरमन्तरयति । बालरामायण पृ० ४७ ॥**

एक कार्य दूसरे कार्य को छिपा देता है ।

७३३. कार्येषु गुरुलाघवं नन्वत्र चिन्त्यते ।

वीणावासवदत्त पृ० ४७ ॥

कार्यों को करते हुये उनके गौरव और लघुता पर विचार करना चाहिये ।

७३४. कुम्भीलकैः कामुकैश्च परिहरणीया खलु चन्द्रिका ।

मालविकाग्निमित्र पृ० ६८ ॥

चोरों और विलासियों को चांदनी का परित्याग कर देना चाहिये । इनका कार्य अन्धकार में होता है ।

७३५. गुणदोषयोर्युगपदापततोर्गरीयसि प्रयतितव्यम् ।

बालरामायण पृ० २१४ ॥

गुण और दोष से युक्त कार्य जब एक साथ आ जावें तो अधिक आवश्यक कार्य को पहले करना चाहिये ।

७३६. दुर्वारविनिपातोऽयं भर्तुराज्ञाव्यतिक्रमः ।

चण्डकौशिक ५.१६ ॥

स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन करना कठिन है और इससे विपत्ति आ सकती है ।

७३७. धिग्वैषम्यं लोकव्यवहारस्य । **मृच्छकटिक** पृ० ३६४ ॥

लोकव्यवहार की विषमता को धिक्कार है ।

७३८. न आत्मनः श्रीरन्यस्य हस्ते प्रापणीया ।

विद्धसालभञ्जिका पृ० ६४ ॥

अपनी लक्ष्मी दूसरे के हाथ में नहीं देनी चाहिये ।

७३९. परस्परगता लोके दृश्यते तुल्यरूपता ।

स्वप्नवासवदत्त ६.१४ ॥

लोक में एक दूसरे के रूप में समानता दिखाई देती है ।

७४०. परिश्रान्तो जनो विश्रमं लभते । कौमुदीमहोत्सव पृ० ६ ॥

थका हुआ व्यक्ति ही विश्राम पाता है ।

७४१ वह्निरेव वह्नेर्भोजनम् । बालरामायण पृ० २१६ ॥

अग्नि से जले हुये की चिकित्सा अग्नि से ही सेक कर की जाती है ।

७४२. वाष्पविश्रामोऽप्यन्तरेषु कर्तव्य एव ।

उत्तररामचरित पृ० ३१७ ॥

बीच बीच में आंसुओं को भी रोकते रहना चाहिये ।

७४३. विवाहो जन्म मरणं यत्र येन यदा भवेत् ।
तत्र तेन तदैवैतज्जायते किल नान्यथा ॥

वीणावासवदत्त १.२ ॥

विवाह, जन्म और मृत्यु जिसके जिस स्थान पर होने होते हैं, वे वहीं होते हैं । इससे अन्यथा नहीं हो सकता ।

७४४. सकृद् विहितदोषं दोषेभ्यो विनिवर्तमानं साधुवद् वीक्षेत ।

बालरामायण पृ० २८३ ॥

जिसके द्वारा एक बार दोष किया गया हो, परन्तु वह अब दोषों से हट गया हो, तो उसको सज्जन के समान देखना चाहिये ।

७४५. सदोषेषु कार्येषु यदल्पदोषं तत् प्रारब्धव्यम् ।

वीणावासवदत्त पृ० ६ ॥

यदि सभी कार्य दोषयुक्त हों तो उनमें कम दोष वाले कार्य को करना चाहिये ।

७४६. सुप्तो न प्रतिबोधयितव्य इति ब्राह्मणाः वदन्ति ।

विद्धसालभञ्जिका पृ० ६२ ॥

ब्राह्मणों का कहना है कि सोते हुये को जगाना नहीं चाहिये ।

७४७. सुलभसादृश्यः लोकसन्निवेशः। **कुन्दमाला पृ० ६१ ॥**

लोक में रचना का सादृश्य सुलभ हो ही जाता है।

७४८. स्वगृहात् स्वगृहमागन्तुं च कामचारः।

महावीरचरित पृ० १४६ ॥

अपने घर से अपने घर में आने में मनुष्य इच्छानुसार व्यवहार करे।

७४९. स्वतन्त्रा लोकयात्रा। **बालरामायण पृ० ८२ ॥**

लोक-व्यवहार स्वतन्त्र ही है।

७५०. हन्त ! पण्डितः तर्हि संसारः। **उत्तररामचरित पृ० १३१ ॥**

खेद है कि सारा संसार पण्डित हो गया है।

[१६१] लोक-व्यवहार के प्रमाण—

७५१. यथा देशजातिकुलतीर्थसमयधर्मश्चाम्नायैरविरुद्धा

प्रमाणम्। **पादताडितक पृ० १५८ ॥**

वेद-शास्त्रों के अनुरूप जो देश, जाति, कुल, तीर्थ और समय के नियम हैं, वे लोक-व्यवहार के प्रमाण हैं।

(१६२) लोकोत्तर-चरित—

७५२. लोकोत्तरं चरितमर्पयति प्रतिष्ठां
पुंसां कुलं न हि निमित्तमुदात्ततायाः ॥

बालरामायण २.५१ ॥

लोकोत्तर चरित ही मनुष्य को प्रतिष्ठा प्रदान करता है।

७५३. लोकोत्तरं किमपि उन्मीलयन्तो जगति राज्योपभोगेभ्यो बीभत्सन्ते महानुभावाः । अनर्घराघव पृ० १६४ ॥

महान् उदार स्वभाव वाले मनुष्य लोकोत्तर चरित को प्रकट करते हुये इस संसार में राज्य का उपयोग करने में भी डरते हैं ।

(१६३) वंचना द्वारा प्रसन्न करना—

७५४. पाययितव्या जीर्णमार्जारी दुग्धमिति काञ्जिकम् ।
बालरामायण पृ० ६४ ॥

यह दूध है, ऐसा करके बूढी बिल्ली को कांजी पिला देनी चाहिये । धूर्त मनुष्य को छल करके ही प्रसन्न करना उचित है ।

७५५. पायिता जीर्णमार्जारी दुग्धमिति तक्रम् ।
कर्पूरमञ्जरी पृ० ११६ ॥

यह दूध है, ऐसा करके बूढी बिल्ली को तक्र पिला दिया । धूर्त मनुष्य को छल द्वारा ही प्रसन्न करना उचित है ।

(१६४) वंश-प्रभाव—

७५६. अकुलीनः कथं सानुक्रोशो भविष्यति । अविमारक पृ० १३ ॥

हीन कुल में उत्पन्न व्यक्ति दयालु नहीं होगा ।

७५७. अनाकलितसारा हि वीरकाण्डप्रसूतिः ।
बालरामायण पृ० १५७ ॥

वीरों के कुल में उत्पन्न सन्तान के बल का आकलन नहीं हो सकता ।

७५८. कुतो वा महोदधिं वर्जयित्वा पारिजातस्योद्गमः ।

मालतीमाधव पृ० ११६ ॥

समुद्र को छोड़ कर कल्पवृक्ष की उत्पत्ति कहां हो सकती है। उच्च वंश में गुणी जन उत्पन्न होते हैं।

७५६ द्यूतजितेऽपि अभिजनत्वम् । बालभारत पृ० ५२ ॥

द्यूत में जीत लिये जाने पर भी कुलीन व्यक्ति का सद्भाव बना रहता है।

७६०. न तादृश्यो महाभागधेयजन्मानोऽन्यत्रासक्तचेतसो भूत्वा परत्र चक्षूरागिण्यो भवन्ति । मालतीमाधव पृ० ६७ ॥

इस प्रकार के महाभाग्यशाली कुल में जन्म लेने वाले लोग एक स्थान पर मन के आसक्त होने के बाद अन्य स्थानों पर प्रेम नहीं करते।

७६१. न खलु वैदूर्यभूमिगर्भोत्पत्तिमन्तरेण वैदूर्यमणिशलाका उत्पद्यते ।

कर्पूरमञ्जरी पृ० ६६ ॥

वैदूर्य मणि की खान को छोड़ कर वैदूर्य मणि अन्य स्थान पर उत्पन्न नहीं होती। श्रेष्ठ सन्तान श्रेष्ठ कुल में ही उत्पन्न होती है।

७६२. ननु हिमवतो गङ्गा प्रभवति । कौमुदीमहोत्सव पृ० ८ ॥

गंगा हिमालय से ही उत्पन्न होती है। पवित्र सन्तान उत्तम कुल में ही जन्म लेती है।

७६३. प्रायेण दौष्कुलेयाः सहैव दम्भेन जायन्ते ।

पादताडितक श्लोक ८५ ॥

हीन कुल में जन्म लेने वाले दम्भ के साथ ही उत्पन्न होते हैं।

७६४. रत्नाकराद् ऋते कुतश्चन्द्रलेखायाः प्रसूतिः ।

नागानन्द पृ० ६१ ॥

चन्द्रमा की उत्पत्ति समुद्र को छोड़ कर और कहाँ से हो सकती है ? महान् व्यक्ति महान् वंश में ही जन्म लेते हैं।

(१६५) वर्तमान की ग्राह्यता—

७६५. **अनागतसुखाशया प्रत्युपस्थितसुखत्यागो न पुरुषार्थः।**

पद्मप्राभृतक पृ० ३०॥

भविष्य में प्राप्त होने वाले सुख की आशा से वर्तमान के सुख का परित्याग करने में कोई पुरुषार्थ नहीं है।

७६६. **तदात्वायत्योस्तदात्वमेव गरीयः प्रत्यक्षफलत्वात्।**

धूर्तविटसंवाद पृ० ११२॥

वर्तमान और भविष्य की सम्पत्तियों में से वर्तमान की सम्पत्ति अच्छी है, क्योंकि वह प्रत्यक्ष फल देने वाली है।

७६७. **भवद्भविष्यदनर्थयोर्भवदनर्थं प्रथमं प्रतिकुर्वीतेति नयविदः।**

बालरामयण पृ० २०॥

वर्तमान और भविष्य की आपत्तियों में से पहले वर्तमान की आपत्तियो का निवारण नीतिज्ञ लोग करते हैं।

७६८. **वरं तत्कालोपनतस्तित्तिरः न पुनर्दिवएन्तरितो मयूरः॥**

विद्धसालभञ्जिका पृ० १४॥

इसी समय प्राप्त होने वाला कबूतर अच्छा है, परन्तु अगले दिन प्राप्त होने वाला मयूर नहीं। भविष्य में मिलने वाले प्रचुर धन की अपेक्षा वर्तमान मे मिलने वाला कम धन अधिक स्पृहणीय है।

(१६६) वाणी—

ऋषियों तथा ब्राह्मणों की वाणी–

७६९. **आर्ष हि वचनं विभिन्नवक्तृकमपि न विसंवदति ।**

बालरामामयण पृ० ६६८ ॥

अनेक वक्ताओं द्वारा कहा गया भी ऋषियों का वचन बदलता नहीं ।

७७०. **आविर्भूतज्योतिषां ब्राह्मणानां ये व्याहारास्तेषु मा संशयो भूत् ।**

भद्रा ह्येषा वाचि लक्ष्मीर्निषक्ता नैते वाचं विप्लुतार्थां वदन्ति ॥

उत्तररामचरित ४.१८ ॥

परम ब्रह्म को प्राप्त करने वाले ब्राह्मणों के वचनों में संशय नहीं करना चाहिये । इनकी कल्याणकारी वाणी में लक्ष्मी का निवास रहता है । ये निष्फल वाणी को नहीं बोलते ।

७७१. **वाचमेषामृषीणां हि शास्त्रमेवानुवर्तते ।** **अनर्घराघव २.५८ ॥**

ऋषियों की वाणी शास्त्र के अनुकूल होती है ।

७७२. **साक्षात्कृतब्रह्मणामृषीणां प्रसन्नगम्भीरपावनानि वचनानि ॥**

महावीरचरित पृ० १४१ ।

ब्रह्म का साक्षात्कार करने वाले ऋषियों के वचन प्रसन्न करने वाले, गम्भीर और पवित्र करने वाले होते हैं ।

कहना सरल है–

७७३. **वक्तुं सुकरं दुष्करमध्यवसितुम् ।** **वेणीसंहार पृ० १२४ ॥**

कहना सरल है और करना कठिन है ।

नीति से युक्त वाणी–

७७४. **प्रिया वा मधुरा वाक् च हर्म्येष्वेव विराजते ।**

श्रीरक्षणे प्रमाणं तु वाचः सुनयकर्कशः ॥

हनूमन्नाटक ६.१५ ॥

प्रिय अथवा मधुर वाणी घरों में ही सुशोभित होती है। परन्तु लक्ष्मी की रक्षा उत्तम नीति से कर्कश वाणियां ही करती हैं।

प्रिय स्नेहभरी वाणी–

७७५. **नैताः प्रियतमाः वाचः स्नेहार्द्राः शोकदारुणाः।**
एतास्ताः मधुनो धाराश्च्योतन्ति सविषास्त्वयि ॥

उत्तररामचरित ३.३४ ॥

ये स्नेह से भीगे तथा शोक से दारुण वचन नहीं हैं, अपितु विष से भरी हुई मधु की धारायें तुम पर पड़ रही हैं। सुनने में प्रिय भी वचन निन्दा से भरे होने पर कष्टकर होते हैं।

७७६. **प्रसन्नानां वाचः फलमपरिमेयं प्रसुवते।**

महावीरचरित १.१२ ॥

प्रसन्न महापुरुषों की वाणियां अभीप्सित फल को प्रदान करने वाली होती हैं।

७७७. **राजन् ! मुखसुखाः वाचो मधुराः कस्य न प्रियाः।**

हनूमन्नाटक ६.१४ ॥

मुख को सुख देने वाली मधुर वाणियां किसको प्रिय नहीं होतीं ?

७७८. **सर्ववचनेषु तावद् विशेषतः प्रियबचनं निवृत्तिकरं भवति।**

धूर्तविटसंवाद पृ० १०८ ॥

सभी प्रकार के वचनों में प्रिय वचन विशेष रूप से शान्ति देने वाला होता है।

बोलने की आतुरता–

७७९. **राजन् विद्वन्मध्ये वा युवतीनां च सङ्गमे।**
साध्वसदूषि तद्हृदयःपुनरपि वाणातुरीभवति ॥

धूर्तविटसंवाद श्लोक ३४ ॥

विद्वानों के मध्य में और युवतियों से मिलने पर घबराहट से भरे हृदय वाला भी पुनः पुनः बोलने को आतुर होता है।

राक्षसी वाणी–

७८०. **ऋषयो राक्षसीमाहुर्वाचमुन्मत्तदृप्तयोः ।**
सा योनिः सर्ववैराणां सा हि लोकस्य निष्कृतिः ॥

उत्तररामचरित ५२९ ॥

ऋषि लोग उन्मत्त और घमण्डी की वाणी को राक्षसी कहते हैं। वह सभी वैरों का कारण है और लोक को तिरस्कृत करने वाली है।

वाणी का महत्व–

७८१. **वचांसि नाम नमस्कारमूलानि ।** **तपतीसंवरण पृ० ९६ ॥**

वचनों द्वारा हीं नमस्कार किया जाता है।

७८२. **वाक्प्रतिष्ठानि देहिनां व्यवहारतन्त्राणि ।**

मालतीमाधव पृ० १८७ ॥

मनुष्यों के व्यवहार वाणी द्वारा ही प्रतिष्ठित होते हैं।

वाणी से रहस्य-भेद न करना–

७८३. **पट्टके घृष्टस्यापि मे मुखेऽस्ति न वाणी ।**

विद्धसालभञ्जिका पृ० ११९ ॥

पट्टे पर घिसे जाने पर भी मेरे मुख में वाणी नहीं है। अत्यधिक उत्पीडित करने पर भी मेरे द्वारा रहस्य का भेदन नहीं हो सकता।

सज्जनों की वाणी–

७८४. **किं सुजनः प्रियं वर्जयित्वा अन्यत् भणितुं जानाति ?**

नागानन्द पृ० ६४ ॥

सज्जन मनुष्य प्रिय वचन को छोड़कर अन्य प्रकार से बोलना नहीं जानता।

७८५. **शास्त्रनिःसंशयाः वाचः सतां कस्य न बल्लभाः ।**

हनूमन्नाटक ११.२० ॥

सज्जनों की शास्त्र के अनुकूल वाणियाँ सबको प्रिय लगती हैं।

७८६. साधीयसां वचसां कामदुघाः शक्तयः। सुभद्राधनंजय पृ० ५२ ॥

सज्जनों के वचन सबकी कामना को पूरा करते है।

७८७. स्थेयासुः श्रुतिशुक्तिलेह्यमधुरास्तावत् सतां सूक्तयः।
विद्धसालभञ्जिका ४.२७ ॥

सज्जनों के सुन्दर कथन कान रूपी सीपी में उपभुक्त होते हुये मधुर लगते हैं।

सूनृता वाणी–

७८८. कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं कीर्तिं सूते दुर्हृदो निष्प्रलान्ति।
शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः ॥
उत्तररामचरित ४.३० ॥

धैर्यशाली लोग शुद्ध, शान्त और सुन्दर सत्य वाणी को धेनु कहते हैं। यह कामनाओं को पूरा करती है, अमंगल को दूर करती है, यश को प्रसारित करती है, शत्रुओं को दूर करती है और मंगलों को उत्पन्न करती है।

(१६७) वात्सल्य—

७८९. आलक्ष्यदन्तमुकुलाननिमित्तहासैरव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन्।
अङ्काश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहन्तो धन्यास्तदङ्गरजसा मलिनी-
भवन्ति ॥ अभिज्ञानशाकुन्तल ७.१७ ॥

बिना कारण हंसियों से कुछ-कुछ दन्तरूपी कलियां जिनकी दृष्टिगोचर होती हैं, जो अव्यक्त वर्णों से युक्त रमणीय वाणी बोलते है, और जो गोदी में आना चाहते हैं ऐसी सन्तानों को उठाते हुये धन्य व्यक्ति ही उनकी धूलियों से मलिन होते हैं।

७९०. डिम्भस्य दुर्विलसितानि मुदे गुरूणाम्। बालरामायण ४.६१ ॥

बालक की धृष्ट चेष्टायें भी गुरुजनों को आनन्दित करती हैं।

(१६८) विगतसुखस्मृति—

७६१. ते हि नो दिवसाः गताः। उत्तररामचरित १.१६ ॥

हमारे वे सुख के दिन चले गये।

(१६९) विघ्न—

७६२. विघ्नवत्यः प्रार्थितार्थसिद्धयः। अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २६४ ॥

अभीप्सित प्रयोजनों की सफलताओं में विघ्न आते ही हैं।

७६३. सविघ्नविप्रुष इव कान्तक्रियारम्भाः। बालरामायण पृ० ६ ॥

सुन्दर कार्यों के आरम्भ करने में विघ्न होते ही हैं।

(१७०) विजिगीषु—

७६४. आत्मद्रव्यप्रकृतिसम्पन्नो नयस्याधिष्ठानं विजिगीषुः।

अनर्घराघव पृ० २७६ ॥

विजिगीषु व्यक्ति को आत्मनियन्त्रण से युक्त तथा नीति को जानने वाला होना चाहिये।

७६५. यावत्प्राणिति तावदुपदेष्टव्यभूमिर्विजिगीषुः प्रज्ञावताम्।

वेणीसंहार पृ० १८६ ॥

जब तक विजिगीषु जीवित रहता है, बुद्धिमानों द्वारा उपदेष्टव्य है।

७६६. विजिगीषोरदीर्घसूत्रता हि कार्यसिद्धेरवश्यंभावः।

अनर्घराघव पृ० २७८ ॥

विजिगीषू की कार्यसिद्धि के लिये यह आवश्यक है कि वह शीघ्र निर्णय लेने वाला हो।

७९७ **यावद्द्रव्यभावी गुणो हि विजिगीषूणामुदात्तता।**

अनर्घराघव पृ० २७० ॥

विजिगीषू के लिये यह आवश्यक है कि वह द्रव्यों का संचय करे और उदार स्वभाव का हो।

(१७१) विद्या—

७९८. **विद्यया ख्यापिता ख्यातिः। धूर्तविटसंवाद श्लोक १ ॥**

विद्या से प्रसिद्धि होती है।

(१७२) विद्वान—

७९९. **आवृणुध्वमतो दोषान् विवृणुध्वं गुणान् बुधाः।**

चण्डकौशिक १.५ ॥

विद्वानों को चाहिये कि दोषो को ढक दे और गुणों को प्रकट करे।

८००. **विद्वांसोऽप्यविकत्थना भवन्ति। मुद्राराक्षस पृ० १०६ ॥**

विद्वान लोग घमण्ड की बाते नहीं करते।

८०१. **व्यतिरेकः कराणां तु न बुधैरवगम्यते।**

तापसवत्सराज पृ० २२२ ॥

किरणों की भिन्नता तो विद्वान भी नही जानते।

(१७३) विद्वानों का प्रामाण्य—

८०२. आपरितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम् ।

अभिज्ञानशाकुन्तल १.२ ॥

विद्वानों के सन्तुष्ट न होने तक प्रयोग को ठीक नहीं समझा जाता ।

(१७४) विधि-भाग्य-काल—

८०३. अभ्युदयेऽवसाने वा तथैव रात्रिन्दिवमहतमार्गा ।
उद्दामेव किशोरी नियतिः खलु प्रत्येषितुं याति ॥

मृच्छकटिक १०.१६ ॥

समृद्धि की अवस्था में और विपन्नावस्था में भी उसी प्रकार से दिन-रात अप्रतिहत गति वाला विधि स्वच्छन्द युवती के समान पुरुष को वश में करता है ।

भाग्य की गति का अविदित रहना—

८०४. दुरवगाहा गतिर्दैवस्य । **रत्नावली पृ० १५६ ॥**

भाग्य की गति को जानना कठिन है ।

८०५. पुरुषभाग्यानामचिन्त्याः खलु व्यापाराः ।

मृच्छकटिक पृ० ३८६ ॥

पुरुषों के भाग्यों के व्यापार अचिन्त्य हैं ।

८०६. लोके कोऽप्युत्थितो पतति कोऽपि पतितोऽप्युतिष्ठते ।

मृच्छकटिक पृ० ४१४ ॥

संसार में कोई व्यक्ति तो उन्नति करके पतित हो जाता है और कोई पतित होकर भी उन्नति करता है ।

८०७. विचित्राणि हि दैवविलसितानि । **नागानन्द पृ० १६८ ॥**

भाग्य विलास विचित्र हैं।

भाग्य की चंचलता—

८०८. **कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना**
चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः॥ स्वप्नवासवदत्त १.४॥

समय के क्रम से परिवर्तित होती हुई भाग्य की पंक्ति अरों की पंक्ति के समान गति करती है।

८०९. **क्षणभङ्गुराणि भाग्यविलसितानि। सुभद्राधनञ्जय पृ० २५॥**

भाग्य के विलास क्षणभंगुर हैं।

८१०. **हस्तिहस्तचञ्चलानि पुरुषभाग्यानि भवन्ति।**
अविमारक पृ० ४७॥

पुरुषों के भाग्य हाथी की सूंड के समान चंचल होते हैं।

भाग्य के लिये सुकर—

८११. **न किञ्चिदनीषत्करं नाम कृतान्तस्य।**
अनर्घराघव पृ० ३१४॥

भाग्य के लिये कोई भी कार्य कठिन नहीं है।

८१२. **नास्ति खलु दुष्करं दैवस्य। प्रियदर्शिका पृ० २६॥**

भाग्य के लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है।

भाग्य को प्रमाण न मानना—

८१३. **दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति। मुद्राराक्षस पृ० १०६॥**

मूर्ख लोग ही भाग्य को प्रमाण मानते हैं।

भाग्यक्रम—

८१४. **भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति।**
चारुदत्त १.५॥

भाग्य के क्रम से ही धन आते हैं और चले जाते हैं।

८१५. **भाग्यानीय मनुष्याणामुन्नमन्ति नमन्ति च।**

पञ्चरात्र १.१४ ॥

मनुष्यों के भाग्य कभी उन्नत होते हैं और कभी अवनत हो जाते है।

भाग्य द्वारा सिद्ध-वाक्यों की अनुल्लंघनीयता—

८१६. **न हि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि।**

स्वप्नवासवदत्त १ ११ ॥

अच्छी प्रकार से परीक्षित सिद्ध वाक्यों का उल्लंघन भाग्य भी नहीं कर सकता।

(१७५) विधि की अनुकूलता—

८१७. **अनुगुणं हि दैवं सर्वस्व स्वस्ति करोति।**

विद्धसालभञ्जिका पृ० ११४ ॥

अनुकूल भाग्य सबका कल्याण करता है।

८१८. **आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूतः।**

रत्नावली १.६ ॥

अनुकूल भाग्य इष्ट वस्तु को तुरन्त जाकर मिला देता है।

८१९. **चिरात् खलु युक्तकारी विधिः स्यात्।**

नागानन्द पृ० ४९ ॥

सम्भवतः चिरकाल के पश्चात् विधि उचित कार्य करने वाला हो सकता है।

८२०. **दिष्ट्यैवं सुप्रभातम्।** **कौमुदीमहोत्सव पृ० १४ ॥**

भाग्य से इस प्रकार का सुप्रभात है। भाग्य इस समय अनुकूल है।

८२१. **दैवं विधानमनुगच्छति कार्यसिद्धिः ।** **अविमारक ३.१२ ॥**

कार्य की सफलता भाग्य के विधान का अनुसरण करती है ।

✓ ८२२. **मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गुणः ।**

रत्नावली १.५ ॥

भाग्य की वृद्धि होने से यह सभी गुणों का समूह एकत्रित हो गया है ।

८२३. **सुलभानुकारः खलु जगति वेधसो निर्माणसन्निवेशः ।**

मालतीमाधव पृ० ४०७ ॥

विधाता का निर्माण संसार में आकृति के अनुसार होता है ।

(१७६) विधि की अनुल्लंघनीयता—

८२४. **अनतिक्रमणीयो हि विधिः ।** **स्वप्नवासवदत्त पृ० १४८ ॥**

भाग्य का उल्लंघन नही किया जा सकता ।

८२५. **एषः क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः ।**

मृच्छकटिक १०.६० ॥

कुयें के रहट के समान ऊपर-नीचे जाता हुआ भाग्य मनुष्यों के साथ क्रीड़ा करता है ।

८२६. **कार्याणां गतयो विधेरपि नयन्त्याज्ञाकरत्वं चिरात् ।**

मुद्राराक्षस ७.१६ ॥

कर्मों की गतियां चिरकाल तक विधाता को भी अपना आज्ञाकारी बना लेती हैं ।

८२७. **को नाम पाकाभिमुखस्य जन्तोर्द्वाराणि दैवस्य पिधातुमीष्टे ।**

उत्तररामचरित ७.४, मालतीमाधव १०.१३ ॥

विधि के विधान को कौन टाल सकता है।

८२८. **दैवी च सिद्धिरपि लंघयितुं न शक्या।** **मृच्छकटिक ६.६ ॥**

दैवी सफलता का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

८२९. **न कस्यचिन्नाम दुरतिक्रमा दैवपरिपाटी।**

चण्डकौशिक पृ० १२८ ॥

भाग्य की परम्परा का कोई उल्लंघन नही कर सकता।

८३०. **न शक्यं लोकस्याधिष्ठानभूतं कृतान्तं वञ्चयितुम्।**

बालचरित पृ० १९ ॥

लोकों के अधिष्टानभूत भाग्य को ठगा नहीं जा सकता।

८३१. **सर्वथा नास्ति विधेरलंघनीयं नाम।**

विक्रमोर्वशीय पृ० २१४

विधि का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

[१७७] विधि की प्रतिकूलता—

८३२. **अकरुणस्यापि विधेरमी सुदुःश्रवा व्यवहाराः ॥**

चण्डकौशिक पृ० १५७ ॥

निर्दयी भाग्य के इन व्यवहारों को सुनना भी कठिन है।

८३३. **अहो देवप्रतिकूलता, यदिदानीं रमणीयमपि उद्वेजयति।**

बालरामायण पृ० २२५ ॥

भाग्य की प्रतिकूलता आश्चर्यजनक है, जो रमणीय पदार्थ को भी उद्विग्न करती है।

८३४. को जानाति दुर्विदग्धः प्रजापतिः कथं क्रीडति ।

कुन्दमाला पृ० ६० ॥

कौन जानता है कि यह धृष्ट भाग्य कैसे क्रीडा करता है ?

८३५. तस्येदं विपुलं विधेर्विलसितं पुसां प्रयत्नच्छिदः ॥

मुद्राराक्षस ५.२० ॥

पुरुषों के प्रयत्नों को काट देने वाले इस भाग्य का ही यह कार्य है ।

८३६. दैवं मुख्यतमं नयादिसकलं खेदावहं केवलम् ।

वीणावासवदत्त ३.६ ॥

भाग्य ही प्रमुख होता है । नीति आदि तो सब केवल कष्ट देने वाले हैं ।

८३७. देवहतक ! ईदृशानि दुःखशतानि संचारयन् अग्निं परितः पलालभारं परिनिक्षिपसि । **तापसवत्सराज पृ० ५० ॥**

हे दुष्ट भाग्य ! तुम इस प्रकार के सैकड़ों दुःखों को संचारित करते हुये अग्नि के चारों ओर मांस के भारों को डाल रहे हो ।

८३८. दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति ।

मुद्राराक्षस ५.८ ॥

भाग्य से मारे गये व्यक्ति की बुद्धि भी उलटी हो जाती है ।

८३९. नरं वामारम्भः कमिव न विधाता प्रहरति ?

चण्डकौशिक ३.२२ ॥

उलटी बातों को आरम्भ करता हुआ विधाता किस मनुष्य पर प्रहार नहीं करता ?

८४०. न हि शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले । स्वप्नवासवदत्त पृ० २२४ ॥

समय पूरा हो जाने पर कोई रक्षा नहीं कर सकता ।

८४१. पतिते व्यसने दैवाद् दारुणे दारुणात्मनि ।
संवर्मयाति वज्रेण धैर्यं हि महतां धनम् ।।

अनर्घराघव ५.१५ ।।

भाग्य के कारण कठोर विपत्तियों के आ पड़ने पर महान् मनुष्यों का मन धैर्य को कवच बनाता है ।

८४२. परिभवास्पदं हि दशाविपर्ययः । विक्रमोर्वशीय पृ० २३१ ।।

भाग्य की दशाओं के उलटा होने से अपमानित होना पड़ता है ।

८४३. प्रतिकूलं हि दैवं स्वारब्धमपि कार्यं विपर्यासयति ।

बालरामायण पृ० ६०६ ।।

प्रतिकूल होकर भाग्य अच्छी प्रकार प्रारम्भ किये गये कार्य को भी उलटा कर देता है ।

८४४. भगवन् कृतान्त ! पुष्करपतितजलबिन्दुचञ्चलैः क्रीडसि दरिद्रपुरुषभागधेयैः । मृच्छकटिक पृ० १३४ ।।

हे भगवन् भाग्य ! तुम कमल के पत्ते पर गिरे जल-बिन्दुओं के समान दरिद्र पुरुषों के चंचल भाग्यों के साथ क्रीडा करते हो ।

८४५ मतिर्वा खर्वभाग्यानां पश्यन्नपि न पश्यसि ?

बालरामायण ६.६३ ।।

क्षुद्र भाग्य वालों की बुद्धि देखते हुये भी नहीं देखती ।

८४६. मनोरथस्य यद् बीजं तद्दैवेनादितो हृतम् ।
लतायां पूर्वलूनायां प्रसवस्योद्भवः कुतः ।।

उत्तररामचरित ५.२० ।।

अभिलाषाओं के बीज को भाग्य ने पहले ही छीन लिया । लता के पहले ही काट लिये जाने पर पुष्प कहाँ से खिल सकते हैं ?

८४७. यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां नरः कृतान्तोपहतां प्रपद्यते ।
तदास्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रतां चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जनः ॥
मृच्छकटिक १.५३ ॥

जब मनुष्य कृतान्त से उपहत होकर भाग्य के विनाश की अवस्था को प्राप्त करता है, तो उसके मित्र भी शत्रु हो जाते हैं तथा चिरकाल से स्नेह करने वाले का मन भी विरक्त हो जाता है ।

८४८. योऽर्थोऽसम्भावनीयस्तमपि घटयति क्रूरकर्मा विधाता ।
हनूमन्नाटक ६.३७ ॥

जिस बात की सम्भावना नहीं होती, क्रूर कार्य करने वाला विधाता उस बात को भी घटित कर देता है ।

८४९. वामे विधो न हि फलन्त्यभिवाञ्छितानि । प्रियदर्शिका ४.८ ॥

विधाता के प्रतिकूल होने पर अभीष्ट फल प्राप्त नहीं होते ।

८५०. सुहृदिव प्रकट्य सुखप्रदां प्रथममेकरसामनुकूलताम् ।
पुनरकाण्डविवर्तनदारुणः परिशिनष्टि विधिर्मनसो रुजम् ॥
उत्तररामचरित ४.१५ ॥

भाग्य पहले तो मित्र के समान सुखद प्रेमपूर्ण मित्रता को प्रकट करके, इसके पश्चात् असमय में ही बदल कर कठोर होकर पीड़ा को उत्पन्न करता है ।

[१७८] विनयशीलता—

८५१. अनुत्सेकः खलु विक्रमालङ्कारः । विक्रमोर्वशीय पृ० १६३ ॥

गर्व न करना ही पराक्रम का आभूषण है ।

८५२. सर्वत्र आर्जवं शोभते । मृच्छकटिक पृ० ४५६ ॥

विनम्रता सभी स्थानों पर शोभित होती है ।

[१७६] विनाशक भाव—

८५३. **प्रमादः सम्पदं हन्ति प्रश्रयं हन्ति विस्मयः ।**
व्यसनं विनयं हन्ति हन्ति शोकश्च धीरताम् ।।

कुन्दमाला ३.२ ॥

प्रमाद सम्पत्ति को नष्ट करता है, गर्व का भाव प्रेम को नष्ट करता है, व्यसन (आपत्ति) नम्रता को नष्ट करता है और शोक धैर्य को नष्ट कर देता है।

(१८०) विपत्ति—

८५४. **एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्थाः बहुलीभवन्ति ॥**

मृच्छकटिक ६.२६ ॥

मनुष्यों की विपत्ति के समय में एक विपत्ति आने पर बहुत से अनर्थ उपस्थित हो जाते हैं।

८५५. **गगनतले वसन्तो चन्द्रसूर्यावपि विपत्तिं लभेते ।**

मृच्छकटिक पृ० ४१४ ।।

आकाश में रहते हुये चन्द्र और सूर्य पर भी विपत्ति आ जाती है। महान् पुरुष भी विपत्तियों से आक्रान्त हो जाते हैं।

८५६. **परिभवोपहारिणी निपाताः । मालविकाग्निमित्र पृ० १३८ ॥**

आपत्तियां तिरस्कार को लाती हैं।

८५७. **मित्रं न कश्चिद् विषमस्थितस्य । मृच्छकटिक १०.१६ ॥**

आपत्ति आने पर कोई मित्र नहीं रहता।

८५८ विनिपातितानां नराणां प्रियकारी दुर्लभो भवति ।

मृच्छकटिक १०.१५ ॥

विपत्ति में पड़े हुये मनुष्यों का प्रिय करने वाला व्यक्ति दुर्लभ होता है ।

८५९. संघचारिणोऽनर्थाः । **अविमारक पृ० २७ ॥**

प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ६५ ॥

अनर्थ समूहों में आते हैं ।

(१८१) विदेश—

८६०. दुरारक्षतया तथा आसन्नदोषा विषयान्तराणि ।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० १८ ॥

दूसरे देशों में रक्षा कठिनाई से होती है । अतः वहां दोष रहते हैं ।

(१८२) विपरीतबुद्धि—

८६१. ईदृशी यस्य मे बुद्धिर्मृगः क्वापि हिरण्मयः ।

हनूमन्नाटक ५.४ ॥

इस प्रकार की यह मेरी बुद्धि हो गई । कहीं सोने का हरिण भी होता है ? विपत्ति आनी हो तो मनुष्य की बुद्धि भी विपरीत हो जाती है ।

८६२. किमिव मर्कटो वरिष्ठानां करणीयं पृच्छति ?

बालरामायण पृ० ७५ ॥

बन्दर क्या गुरुजनों से करने योग्य बात को पूछता है ? चंचल बुद्धि वाले गुरुजनों की बात नहीं मानते ।

(१८३) विरह—

८६३. **चन्द्रोदयविरहात् कुमुद्वती निःश्रीका संवृत्ता ।**

पद्मप्राभृतक पृ० ४० ॥

चन्द्रोदय के विरह में कुमुदिनी शोभाविहीन हो गई । प्रेमी के विरह में प्रेमिका अति पीडित है ।

८६४. **न हि तरणिकरस्पर्शादन्यो व्याधिरिन्दीवरस्य ।**

बालरामायण पृ० २३६ ॥

सूर्य की किरणों के स्पर्श के अतिरिक्त नीलकमल को कोई अन्य रोग नहीं है । प्रेमी का स्पर्श ही प्रेमिका को प्रफुल्लित कर सकता है ।

८६५. **सन्तापकारिणो बन्धुजनविप्रयोगा भवन्ति ।**

उत्तररामचरित पृ० ३२ ॥

बन्धुओं के वियोग दुःख देने वाले होते हैं ।

(१८४) विश्वास—

८६६. **सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति । अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३६३ ॥**

सभी अपने सजातीयों पर विश्वास करते हैं ।

(१८५) विश्वासघात—

८६७. **जनयति खलु रोषं प्रश्रयो भिद्यमानः । चारुदत्त पृ० १४ ॥**

विश्वास टूटने पर क्रोध उत्पन्न होता है ।

८६८. **विस्रब्धवंचयिता वध्यः । सुभद्राधनञ्जय पृ० १५५ ॥**

विश्वासघाती वध के योग्य है ।

(१८६) विष्णु—

८६९. **अनतिक्रमणीया विष्णोराज्ञा ।** **बालचरितम् पृ० ३७ ॥**

विष्णु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जा सकता ।

८७०. **आत्मारामा विहितरतयो निर्विकल्पे समाधौ**
ज्ञानोद्रेकाद् विघटिततमोवृत्तयः सत्वनिष्ठाः ।
यं वीक्षन्ते किमपि तमसां ज्योतिषां वा पुरस्तात्
तं मोहान्धः कथमयममुं वेत्ति देवं पुराणम् ॥

वेणीसंहार १.२३ ॥

आत्म तत्व में ही रमण करने वाले, निर्विकल्पक समाधि में आनन्द प्राप्त करने वाले, सत्व गुण को प्रबल करके ज्ञान का उद्रेक होने से तमोगुण को नष्ट करने वाले योगी जन जिस भगवान् विष्णु का दर्शन अन्धकार और प्रकाश से परे करते हैं, मोह से अन्धा व्यक्ति उस पुरातन पुरुष को कैसे जान सकता है । विष्णु परम ब्रह्म का रूप हैं । सत्व गुण को प्रबल बना कर ज्ञान प्राप्त करके और निर्विकल्पक समाधि में स्थित होकर आत्मा में आनन्द प्राप्त करके ही योगी जन उसका साक्षात् कर सकते हैं । वह प्रकाश और अन्धकार दोनों से परे है । मोह से अन्धा व्यक्ति उसका दर्शन नहीं कर सकता ।

८७१. **कृतगुरुमहदादिक्षोभसम्भूतमूर्तिं गुणिनमुदयनाशस्थानहेतुं प्रजानाम् ।**
अजरममरमचिन्त्यं चिन्तयित्वापि न त्वां भवति जगति दुःखी किं पुनर्देव दृष्ट्वा । **वेणीसंहार ४.४३ ॥**

महद् आदि के संक्षोभ से जिसका मूर्त रूप प्रकट होता है, जो संसार में उत्पत्ति, विनाश और स्थिति का कारण है, जो अमर, अजर, और अचिन्त्य है, ऐसे उस भगवान् के विचार करने मात्र से ही संसार में कोई व्यक्ति दुःखी

नहीं रहता, दर्शन करने का कहना ही क्या है।

८७२. **दानवानां वधार्थाय वर्तते मधुसूदनः। बालचरितम् २.१३ ॥**

विष्णु दानवों का वध करने के लिये ही हैं।

८७३. **यं शैवा समुपासते शिव इति ब्रह्मे ति वेदान्तिनः**
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं वो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥
हनूमन्नाटक १ ३ ॥

जिस विष्णु भगवान् की उपासना शैव लोग शिव के रूप में करते हैं, वेदान्ती लोग ब्रह्म के रूप में करते हैं, बौद्ध मतावलम्बी बुद्ध के रूप में करते हैं, प्रमाण में निपुण नैयायिक कर्त्ता के रूप में करते हैं, जैनी लोग अर्हत् के रूप में करते हैं, और मीमांसक कर्म के रूप में करते हैं, तीनों लोकों के स्वामी वे विष्णु मुझको इष्ट फल प्रदान करें।

८७४. **विष्णुस्त्रिधामा भगवानुपेन्द्रो नारायणश्चक्रधरो मुरारिः।**
दामोदरः शौरिरनन्तमूर्तिः कृष्णोऽच्युतः कंसरिपुर्मुकुन्दः ॥
वीणावासवदत्त ३.१० ॥

विष्णु के ये नाम हैं—विष्णु, त्रिधामा, भगवान्, उपेन्द्र, नारायण, चक्रधर, मुरारि, दामोदर, शौरि, अनन्तमूर्ति, कृष्ण, अच्युत, कंसरिपु और मुकुन्द।

८७५. **स्थित्युत्पत्तिप्रलयविधयो, यद्वशे प्राणभाजां**
जागर्त्येतद् भुवनमखिलं जागरूके च तस्मिन्।
सुभद्राधनञ्जय ५.१३ ॥

सभी प्राणियों की स्थिति, उत्पत्ति और विनाश उस विष्णु के ही आधीन हैं। उसके जागते रहते हुये ही सारा जगत् जागता रहता है।

(१८७) वीणा—

८७६. उत्कण्ठितस्य हृदयानुगता वयस्या संकेतके चिरयति प्रवरो विनोदः ।
संस्थापना प्रियतमा विरहातुराणां रक्तस्य रागपरिवृद्धिकरः प्रमोदः ॥ मृच्छकटिक ३.३ ॥

वीणा के निम्न लाभ हैं—यह विरहपीडित के लिये हृदय के अनुकूल सखी है, संकेत स्थान पर प्रिय के देर करने पर उत्कृष्ट मनोरंजन है, विरह से पीडितों को सान्त्वना देने वाली प्रियतमा है और प्रेमी के अनुराग को बढ़ाने वाली मनोरंजन की हेतु है ।

८७७. वीणा हि नामा समुद्रोत्थितं रत्नम् । मृच्छकटिक पृ० १०६ ॥

वीणा तो समुद्र से न निकली हुई रत्न है ।

(१८८) वीर व्यवहार—

८७८. अपि मशककुटुम्बं केसरी किं पिनष्टि ?
हनूमन्नाटक ११.२३ ॥

क्या सिंह मच्छरों को पीसता है ? शक्तिशाली जन निर्बलों पर पराक्रम नहीं दिखाते ।

८७९. एकस्यापि विधूतकेसरसटाभारस्य भीताः मृगाः
गन्धादेव हरेर्द्रवन्ति बहवो वीरस्य किं संख्यया ॥
देवीचन्द्रगुप्त पृ० ८५९ ॥

केसरों को फटकारने वाले वीर सिंह की गन्ध से ही अनेक मृग डर कर भाग जाते हैं । संख्या से क्या है ? अकेला वीर अनेक कायरों के लिये पर्याप्त है ।

८८०. को हन्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम् । मुद्राराक्षस १.८ ॥

सिंह को तिरस्कृत करके कौन उसकी दाढ को निकाल सकता है। वीर पराक्रमी को अपमानित करने का साहस कोई नहीं कर सकता।

८८१. **तेजस्तेजसि शाम्यतु।** **उत्तररामचरित ५.७ ॥**

तेज तेज में शान्त हो। वीर पुरुष वीरों से ही युद्ध करते हैं।

८८२. **दुःखितस्याश्रुपातः कुपितस्य चायुधद्वितीयस्य संग्रामावतरण-मुचितम्।** **वेणीसंहार पृ० १२४ ॥**

दुःखी को चाहिये कि वह आंसू बहाये और कुपित को चाहिये कि वह आयुध लेकर संग्राम में उतरे।

८८३. **न खलु अनपेक्षणीयसाहसंकरसा वीरा भवन्ति।**

तापसवत्सराज पृ० १६९ ॥

वीर पुरुष शरीर की परवाह न करने वाले साहसी होते हैं।

८८४. **न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां विषहते।**

उत्तररामचरित ६.१४ ॥

तेजस्वी पुरुष दूसरे के तेज को फैलते देख कर सहन नहीं करते।

८८५. **निरस्तपुरुषाचारस्य का वीरता।** **महावीरचरित पृ० २५ ॥**

पुरुषों के योग्य सदाचार का परित्याग करने वाले की वीरता प्रशंसनीय नहीं है।

८८६. **प्रत्युपस्थिते रणे का गतिः।** **उत्तररामचरित पृ० ३५२ ॥**

युद्ध के उपस्थित होने पर और चारा ही क्या है ?

८८७. **प्राकृतानि तेजांस्यप्राकृते ज्योतिषि शाम्यन्ति।**

महावीरचरित पृ० ९६ ॥

सामान्य तेज असामान्य तेज के उपस्थित होने पर शान्त हो जाते हैं।

८८८. ये हि गलगोड्डं दत्वा विधिगतं तं लिखन्ति ते नेतृकाः ।

तापसवत्सराज ४.१ ॥

नेता वेही हैं, जो दुश्मन के गले पर गोडा रख कर भाग्य की रेखायें अंकित करते हैं ।

८८६. परं व्यायच्छतो मृत्युः न गृहीतस्य बन्धने ।

मृच्छकटिक ६.१७ ॥

युद्ध करते हुये मर जाना अच्छा है, बन्धन में पकड़ा जाना अच्छा नही ।

८६०. विधत्स्व स्वयशोवीर्यं किं वीरस्य विकत्थना ?

बालरामायण ४.८४ ॥

अपने यश और पराक्रम के अनुसार कार्य करना चाहिये । वीर पुरुष के लिये बकवास करना अच्छा नहीं है ।

८६१. वीराणां समयो हि दारुणरसः स्नेहक्रमं बाधते ।

उत्तररामचरित ५.१६ ॥

वीरों का वीर रस कठोर होता है और वह स्नेह की मर्यादा को लांघ जाता है ।

८६२. शूराणां मृतमारणे न हि वरो धर्मः प्रयुक्तो बुधैः ।

हनूमन्नाटक ५.३२ ॥

मरे हुये को मारना शूरों का धर्म नहीं है ।

८६३. सुलभद्वेषं हि वीरव्रतम् । महावीरचरित ३.३ ॥

वीर व्रत का निर्वाह करने में द्वेष होना सुलभ है ।

[१८९] वृद्धावस्था—

८६४. क्रोधप्रायं वयो जीर्णम् । पञ्चरात्र १.४३ ॥

वृद्धावस्था में क्रोध अधिक आता है।

८६५. जरद्भुजङ्ग इव जरात्वचमुत्सृजामि।

पद्मप्राभृतक पृ० २६ ॥

वृद्ध साँप के समान वृद्धावस्था की त्वचा को छोड़ता हूं। शौकीन वृद्ध शृंगार द्वारा युवा दीखने का प्रयत्न करता है।

(१९०) वेश्या—

प्रशंसनीय वेश्या-

८६६. अतिदरिद्रपुरुषासक्ता गणिका अवचनीया भवति।

चारुदत्त पृ० १३५ ॥

अति दरिद्र पुरुष के प्रति प्रणय करने वाली वेश्या प्रशंसनीय होती है।

८६७. दरिद्रपुरुषसंक्रान्तमनाः खलु गणिका लोकेऽवचनीया भवति।

मृच्छकटिक पृ० ७० ॥

दरिद्र पुरुष के प्रति मन लगाने वाली वेश्या इस संसार में प्रशंसनीय होती है।

८६८. शोभा हि पणस्त्रीणां सदृशजनसमाश्रयः।

मृच्छकटिक ८.३३ ॥

वेश्याओं की शोभा इसी में है कि वे अपने योग्य व्यक्ति का आश्रय लें।

वेश्या की अपवित्रता-

८६९. न वेशजाताः शुचयस्तथाङ्गनाः। **मृच्छकटिक ४.१७ ॥**

वेश्यालयों में उत्पन्न स्त्रियां पवित्र नहीं होतीं।

वेश्या की अविश्वसनीयता-

९००. अविश्वसनीयानि खलु वेश्याजनस्य हृदयानि ।
उभयाभिसारिका पृ० १३५ ॥

वेश्याओं के हृदय विश्वास के योग्य नहीं होते ।

९०१. वेश्यालिपिकारस्य छिद्रप्रहारित्वात्तुल्यमुभयम् ।
धूर्तविटसंवाद पृ० ६६ ॥

वेश्या और लिपिक दोष देख कर तुरन्त प्रहार करते हैं ।

वेश्या की धन-आसक्ति–

९०२ अकन्दसमुत्थिता पद्मिनी, अवञ्चको वणिग्, अचौरः सुवर्णकारः, अकलहो ग्रामसमागमः, अलुब्धा गणिकेति दुष्करमेते सम्भाव्यन्ते । मृच्छकटिक पृ० १८४ ॥

बिना कन्द के उत्पन्न होने वाली पद्मिनी, न ठगने वाला व्यापारी, चोरी न करने वाला सुनार, बिना झगड़े के ग्रामवासियों का एकत्रित होना और लालच न करने वाली वेश्या इनका मिलना कठिन है ।

९०३. असंगृहीतमाषस्य वेशप्रवेशो निरायुधस्य संग्रामावतरणमित्यु-भयमपार्थकं केवलमयशसे चानर्थाय च ।
पादताडितक पृ० १६७-१६८ ॥

सिक्कों को बिना लिये वेश्यालय में प्रवेश करना ऐसा ही है, जैसे कि आयुद्ध लिये बिना युद्ध में उतरना । इससे यह कार्य व्यर्थ हो जाता है तथा अपकीर्ति और अपयश ही मिलता है ।

९०४. एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो–
र्विश्वासयन्ति पुरुषं न च विश्वसन्ति । मृच्छकटिक ४.१४ ॥

ये वेश्यायें धन के लिये हंसती हैं और रोती हैं । पुरुषों को ये विश्वास में लेती हैं और स्वयं विश्वास नहीं करतीं ।

६०५. दानं नाम सर्वसामान्यं वशीकरणं वेशवधूनाम् ।

धूर्तविटसंवाद पृ० ६० ॥

धन के देने से वेश्याये सामान्य रूप से वशीभूत हो जाती हैं ।

६०६. **यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता धनहार्यो ह्यसौ जनः ।**

मृच्छकटिक ५.६ ॥

जिसके पास धन है, सुन्दरी वेश्या उसी की है । वह धन से खरीदी जाती है ।

६०७. वहसि च धनहार्यं पण्यभूतं शरीरम् । चारुदत्त १.१७ ॥

वेश्या का शरीर धन से खरीदा जा सकने वाला विक्रेय पदार्थ है ।

वेश्या की वर्जनीयता–

६०८. **तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन**
वेश्याः श्मशानकुसुमा इव वर्जनीयाः । मृच्छकटिक ४.१४ ॥

उत्तम कुल और शील से सम्पन्न मनुष्य को चाहिये कि वह वेश्याओं को श्मशान के पुष्पों के समान छोड़ दे ।

वेश्या दुःख का कारण–

६०९. वेश्या नाम पादुकान्तरप्रविष्टेव लेष्टुका दुःखेन पुनर्निराक्रियते ।

मृच्छकटिक पृ० १९६ ॥

वेश्या तो जूते के अन्दर प्रविष्ट कंकड़ी के समान दुःख देती है और इसका निराकरण कठिन है ।

६१०. **वेश्या हस्ती कायस्थो भिक्षुश्चाटो रासभश्च यत्रैते निवसन्ति**
तत्र दुःखा अपि न जायन्ते । **मृच्छकटिक पृ० १६४ ॥**

वेश्या, हाथी, कायस्थ, भिक्षुक, ठग, और गधा जहां रहते हैं, वहां दुःख ही दुःख उत्पन्न होते हैं ।

वेश्या–पिशुनत्व–

६११. **गणिकाजनो नाम पैशुन्यप्राभृतैषा जातिः ।**

पद्मप्राभृतक पृ० ५६ ॥

वेश्याओं की जाति चुगलखोर होती है ।

वेश्या-प्रणय का अनौचित्य–

६१२. **नानापुरुषसंगमेन वेश्याजनोऽलीकदक्षिणो भवति ।**

मृच्छकटिक पृ० १४२ ॥

नाना पुरुषों के संग के कारण वेश्यायें मिथ्या अनुकूलता दिखाती हैं ।

६१३. **शिरोवेदना नाम गणिकाजनस्य लक्षव्याधियौतकम् ।**

पादताडितक पृ० १८० ॥

वेश्याओं की शिरोवेदना रोग का बहाना करके सम्पत्ति लेना है ।

६१४. **श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम् ।**

मुद्राराक्षस ३.५ ॥

अवसर निकालने वाली लक्ष्मी के समान वेश्या को वश में करना बहुत कठिन है ।

वेश्यामाता–

६१५. **गणिकामातरो नाम कामुकजनस्य निष्प्रतीकारा ईतयः ।**

उभयाभिसारिका पृ० १३५ ॥

वेश्याओं की मातायें कामी (विलासी) जनों के लिये ऐसी दुःख हैं, जिनका प्रतीकार नहीं है ।

वेश्या-विलास–

६१६ **मृतमपि संजीवयेद् वेश्यामुखरसः ।** **धूर्तविटसंवाद पृ० ७३ ॥**

वेश्या के मुख का रस मरे हुये को जिला सकता है ।

(१९१) वैराग्य—

६१७ **एते हि मर्मच्छिदः संसारभावाः, येभ्यो बीभत्समानाः सन्त्यज्य सर्वान् कामानरण्ये विश्राम्यन्ति मनीषिणः।**

उत्तररामचरित पृ० ३२ ॥

संसार के ये भाव मर्म को छेदने वाले हैं, जिससे डरते हुये मनीषी पुरुष सभी कामनाओं का परित्याग करके वन में विश्राम करते हैं।

६१८. **एवमेकाकिनी चिरं भव। नागानन्द पृ० १२६ ॥**

तुम अकेले चिरकाल तक वन में रहो। विरक्त रहो।

६१९. **क्रोडीकरोति प्रथमं यदा जातमनित्यता।**
धात्रीव जननी पश्चात् तदा शोकस्य कः क्रमः ॥

नागानन्द ४.८ ॥

उत्पन्न व्यक्ति को पहले तो अनित्यता गोद में ले लेती है, तदनन्तर माता के समान पृथिवी गोदी में लेती है। अतः इसमें शोकका स्थान नहीं है।

६२०. **घातितानेकबन्धुर्मे किं राज्येन जयेन वा। वेणीसंहार ४.६ ॥**

अनेक बन्धुओं के मारे जाने पर मुझको राज्य से अथवा जीत जाने से भी क्या लाभ है ?

६२१. **न निष्परिग्रहं स्थानभ्रंशः पीडयति। मुद्राराक्षस पृ० ६६ ॥**

सामग्री से रहित व्यक्ति स्थान से भ्रष्ट होकर भी पीडित नहीं होता।

६२२. **निरीहाणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः।**

मुद्राराक्षस ३.१६ ॥

कामनाओं से रहित व्यक्ति राजाओं को भी तिनके समान तुच्छ समझता है।

९२३. मेदोऽस्थिमांसमज्जासृक्संघातेऽस्मिंस्त्वचावृते ।
शरीरनाम्नि का शोभा सदा बीभत्सदर्शने ।।

नागानन्द ५.२४ ।।

मेदा, अस्थि, मांस, मज्जा और रक्त के संघात रूप त्वचा से ढके तथा वीभत्स दिखाई देने वाले शरीर में सौन्दर्य ही क्या है ?

९२४ सर्वसाधारणो ह्येष मनसो मूढग्रन्थिरान्तरश्चेतनावतामुपप्लवः संसारतन्तुः । उत्तररामचरित पृ० ४५२ ।।

मोह की ग्रन्थि से सर्वसाधारण का मन बन्धन में रहता है । परन्तु यह संसार का तन्तु ज्ञानियों के लिये उपद्रव ही है ।

९२५. सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिनः ।
शरीरकस्यापि कृते मूढाः पापानि कुर्वते ।।

नागानन्द ४.७ ।।

सभी अपवित्रताओं के निधान, कृतघ्न, विनाशशील इस शरीर के लिये मूर्ख लोग पाप करते हैं ।

(१९२) व्यवहार-अनौचित्य—

अयुक्तं पररहस्यं श्रोतुम् । चारुदत्त पृ० १८ ।।

दूसरों के रहस्यों का सुनना उचित नहीं है ।

९२७. अविचिन्त्य फलं वल्लयास्त्वया पुष्पवधः कृतः ।

पादताडितक श्लोक ४४ ।।

लता के फल का बिना विचार किये तुमने पुष्प तोड़ दिया । परिणाम का विचार किये बिना कार्य करना उचित नहीं ।

६२८. असावस्यैवापराधो यदुत्फुल्लफणं फणावन्तं न पश्यति ।
बालरामायण पृ० २२२ ॥

यह इसका ही अपराध है, जो फण खड़ा किये सर्प को नहीं देखता । समक्ष विपत्ति का विचार किसी भी कार्य को करते समय अवश्य करना चाहिये ।

६२९. इदं खलु भवता समुद्राभ्युक्षणं क्रियते यद् वागीश्वरं वाग्भिरर्चयसि । पद्मप्राभृतक पृ० ११ ॥

यह आप समुद्र को ही सींच रहे हैं, जो वागीश्वर की वाणियों से पूजा करते हैं । समृद्ध को धन देकर प्रसन्न नहीं किया जा सकता ।

६३०. एवं नामायुक्तमनुरुध्यमानाः पुमांसो महत्ययुक्तगह्वरे निपात्यन्ते ।
महावीरचरित पृ० १६७ ॥

इस प्रकार अनुचित कार्यों के लिये अनुरोध किये जाते हुये मनुष्य महान् अनुचित गढ़े में गिरा दिये जाते हैं । अनुरोध किये जाने पर भी अनुचित कार्यों को करना उचित नहीं है ।

६३१ क इदानीं शरीरनिर्वापयित्रीं ज्योत्स्नां पटान्तेन वारयति ।
अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २४६ ॥

शरीर को शीतलता-शान्ति देने वाली चांदनी को वस्त्र से कौन रोकता है ? आते हुये शुभ को रोकना उचित नहीं ।

६३२. कः शक्तिमानपि शशाङ्कमूर्ति शिलापट्टके पिनष्टि ?
बालरामायण पृ० ४६१ ॥

शक्तिशाली होते हुये भी चन्द्रमा को कौन शिला पर पीसता है ? कोमल सुन्दर वस्तु को नष्ट करना उचित नहीं ।

६३३. कथं दीपिकां तमः कलङ्कयति? आश्चर्यचूडामणि पृ० २५७ ॥

दीपकों को अन्धकार कैसे कलुषित कर सकता है । तेजस्वी गुणी को कलंक लगाना समुचित नहीं ।

६३४. **कथमयं ते माणिक्यपरिहारेण गैरिकपरिग्रहः ?**

अनर्घराघव पृ० १६८ ॥

यह तुम माणिक्य छोड़ कर गेरू क्यों ग्रहण करते हो। उत्तम वस्तु को छोड़ कर हीन वस्तु को स्वीकार करना उचित नहीं।

६३५. **कस्मादरण्यरोदनं करोषि ?** **रत्नावली पृ० ११६ ॥**

अरण्य-रोदन क्यों करते हो ? जहां कोई सुनने वाला न हो, वहां अपनी बात कहना उचित नहीं।

६३६. **का गृहनिर्गतस्य चिन्ता ?** **तापसवत्सराज पृ० १२१ ॥**

घर से निकले हुये की चिन्ता करना उचित नहीं।

६३७. **किं गते सलिले सेतुबन्धेन प्रयोजनम् ?**

विद्धसालभञ्जिका पृ० ११५ ॥

बाढ निकल जाने पर बांध बनाने से क्या लाभ ? विपत्ति आने से पहले ही उपाय करना चाहिये।

६३८. **किं वा नग्नक्षपणकः कार्पासवाटिकां रक्षन् पृच्छति ?**

तापसवत्सराज पृ० १२१-१२२ ॥

नंगा साधु कपास के बगीचे की रक्षा करने के लिये क्या पूछता है ? जिसका जिस वस्तु से प्रयोजन नहीं है, उसकी चिन्ता करना उचित नहीं है।

६३९. **कितवेष्वपि कैतवं नामारभ्यते ?** **पद्मप्राभृतक पृ० २३ ॥**

छलियों से भी छल करते हो ? छली के प्रति छल करना सफल नही होता।

६४०. **किमिति त्वया दिवा दीपप्रज्ज्वालनं क्रियते ?**

पद्मप्राभृतक पृ० ८ ॥

तुम दिन में दीपक क्यों जलाते हो ?

६४१. किमिति गोपालकुले तक्रविक्रयः क्रियते ?

पद्मप्राभृतक पृ० २२ ॥

ग्वालों के घरों में लस्सी क्यों बेचते हो ? जिसके पास जो वस्तु प्रचुर हो, उसको वह वस्तु देने का औचित्य नहीं है ।

६४२ किमिदमाकाशरोमन्थनं क्रियते ? पद्मप्राभृतक पृ० ८ ॥

आकाश का विलोडन क्यों करते हो ? असम्भव कार्य करने का औचित्य नही है ।

६४३. कीदृशस्तृणानामग्निना सह विरोधः ? मुद्राराक्षस पृ० ३२ ॥

तिनकों का अग्नि के साथ विरोध कैसे हो सकता है ? निर्बल व्यक्ति द्वारा बलवान् का विरोध करने का औचित्य नहीं है ।

६४४. को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिञ्चति ?

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २७७ ॥

नवमालिका को गरम जल से कौन सींचता है ? कोमल के प्रति कठोर व्यवहार नहीं किया जाता ।

६४५. को हि नाम आत्मना कृतं प्रत्युपकारेण विनाशयति ?

चारुदत्त पृ० ६७ ॥

अपने किये गये उपकार को प्रत्युपकार की अपेक्षा करके विनष्ट करना उचित नहीं ।

६४६. छत्रेण चन्द्रातप इव प्रतिषिध्यते । पद्मप्राभृतक पृ० २८ ॥

छाते से चान्दनी को नहीं रोकना चाहिये । आते हुये कल्याण को रोकना नहीं चाहिये ।

६४७. त्वमेव पुत्तलिकां भङ्क्त्वा इदानीं रोदिषि ?

प्रियदर्शिका पृ० ३८ ॥

तुम ही अब पुतली को तोड़ कर रोते हो ? स्वयं हानि करके रोना उचित नहीं।

९४८. **द्राक्षा रसः न मधुरीयति शर्करया। कर्पूरमञ्जरी २.२६ ॥**

अंगूर के रस को शकर से मीठा नहीं किया जाता।

९४९. **न घटस्य कूपपाते रज्जुरपि तत्र प्रक्षेप्तव्या।**

वेणीसंहार पृ० १८४ ॥

घड़े के कूयें में गिर जाने पर रस्सी को भी नहीं फेंक देना चाहिये।

९५०. **नटे** दृष्टे **मुण्डिते उपविष्टः पतिर्मुण्डितः।**

विद्धसालभञ्जिका पृ० १३ ॥

नट को मुंडा देख कर बैठे हुये पति को भी मुंडवा दिया। बिना विचार किये अनुकरण करना उचित नहीं।

९५१ न दीपेनाग्निमार्गणं क्रियते। पद्मप्राभृतक पृ० ३० ॥

दिया लेकर अग्नि को नहीं खोजा जाता।

९५२. **न न्याय्यं परदोषमभिधातुम्। प्रतिमानाटक पृ० १०३ ॥**

दूसरों के दोषों का बखान करना उचित नहीं।

९५३. **न युक्तं बन्धुव्यसनं विस्तरेणावेदयितुम्।**

मुद्राराक्षस पृ० २० ॥

बन्धुओं की विपत्ति को विस्तार से कहना उचित नहीं।

९५४. न युक्तमस्थाने रसभङ्गं कर्तुम्। प्रियदर्शिका पृ० ७१ ॥

अस्थान में रस का भंग करना उचित नहीं।

९५५ न वानरो वेष्टनमर्हति गर्दभो वा वरप्रवहणं वोढुम्।

पादताडितक पृ० १५५ ॥

बन्दर द्वारा परिक्रमा अथवा गधे द्वारा वर के वाहन का खींचा जाना उचित नहीं है। अयोग्य को शुभ कार्यों में नहीं लगाना चाहिये।

९५६. न संसर्गमर्हति कुटुम्बिनामनर्गलः स्त्रीजनः।

आश्चर्यचूडामणि पृ० ४३॥

अनर्गल स्त्रियों से कुटुम्बियों को सम्पर्क रखना उचित नहीं।

९५७. न रथमतीत्य गोयानेन व्रजेत् पुरुषः।

धूर्तविटसंवाद पृ० ६३॥

रथ को छोड़ कर कोई पुरुष बैलगाड़ी से यात्रा नहीं करता। अच्छी वस्तु को छोड़ कर हीन वस्तु को स्वीकार करना उचित नहीं।

९५८. नीते रत्ने भाजने को विरोधः? प्रतिज्ञायौगन्धरायण ४.११॥

रत्न छीन लिये जाने पर पात्र की रक्षा करने से क्या लाभ? मुख्य वस्तु के नष्ट हो जाने पर गौण वस्तु की रक्षा करने का औचित्य नहीं है।

९५९. नैसर्गिकी सुरभिणः कुसुमस्य सिद्धा
मूर्ध्नि स्थितिर्न मुसलैरवताडनानि॥ मालतीमाधव ९.५१॥

सुगन्धित पुष्प को सिर पर ही धारण करना चाहिये, मूसलों से मसलना नहीं चाहिये।

९६०. परभुक्तरसा पद्मा परं रत्नं धराकरम्।
भारती च विरक्तेति त्यज्यते किमयं नयः॥

आश्चर्यचूडामणि ५.२२॥

यह कौन-सी नीति है कि लक्ष्मी को इसलिये छोड़ दिया जावे कि इसका दूसरों ने उपभोग किया है, उत्तम रत्न को इसलिये छोड़ दिया जावे कि इसको दूसरों ने उपभोग किया है, और विद्या को विरक्त समझ कर छोड़ दिया जावे।

९६१. **पाटच्चरो भाण्डागाररक्षाऽधिकारे लम्भितः ।**

सुभद्राधनञ्जय पृ० ७६ ॥

चोर को वस्तु-भण्डार की रक्षा के लिये नियुक्त नहीं करना चाहिये ।

९६२. **महीपतिरपरप्रबन्धदर्शी कविरपाठरुचिश्च न चिरं नन्दति ।**

बालरामायण पृ० ३९९ ॥

दूसरों के द्वारा प्रबन्ध को देखने वाला राजा और कविता का पाठ करने में रुचि न रखने वाला कवि ये दोनों अधिक समय तक सुखी नहीं रहते ।

९६३. **यस्य वज्रमणेर्भेदे भिद्यन्ते लोहसूचयः ।**
करोतु तत्र किं नाम नारीनखविलेपनम् ।

बालरामायण ३.६६ ॥

जिस हीरे में छेद करने में लोहे की सुइयां भी टूट जाती हैं, उसको नारी के नाखूनों से कैसे काटा जा सकता है । कठोर वस्तु पर कोमल व्यवहार करना उचित नहीं ।

९६४. **ये कामिनीं गुणवतीं च सयौवनां च नारीं नराः प्रणयिनीं च विमानयन्ति ।**
ते भो कृषीवलवचः परिदाघचित्तैर्गोभिः समं पृथुमुखेषु, हलेषु योज्याः ॥

धूर्तविटसंवाद श्लोक ३६ ॥

जो मनुष्य गुणवती, युवती, कामिनीरूप प्रेमिका का तिरस्कार करते हैं, उनको किसानों की गालियों से जलते हुये चित्त वाले बैलों के साथ चौड़े मुख वाले हलों में जोता जाना चाहिये । प्रणयिनी का तिरस्कार करना उचित नहीं ।

९६५. **रक्तां संवादयति वल्लकीमुल्मुकेन ?**

पद्मप्राभृतक श्लोक १८ ॥

प्रिय वीणा को मशाल से बजाते हो ? प्रिया के प्रति कठोर व्यवहार उचित नहीं ।

९६६. **वल्लकीमुल्मुकेन मा वादीः ।** पादताडितक पृ० १५५ ॥

वीणाको मशाल से मत बजाओ । प्रिया के प्रति कठोर व्यवहार नहीं करो ।

९६७. **विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वाऽनारम्भः प्रतीकारस्य ।**
अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २३४ ॥

विकार को ठीक-ठीक जाने बिना उसके प्रतीकार को जाना नहीं जा सकता । विपत्ति के कारण को जाने बिना उसका उपाय नही किया जा सकता ।

९६८. **विरम सह संगृहीतुं बिल्वद्वयमेकहस्तेन ।**
पादताडितक श्लोक ९६ ॥

दोनों बिल्व-फलों को एक हाथ से मत थामो । किन्हीं वस्तुओं को सम्भालने के लिये समुचित साधन होने चाहिये ।

९६९. **विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति ।**
अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २५२ ॥

कहने की इच्छा होने पर भी न कहने से पश्चात्ताप होता है । कहने की इच्छा होने पर उसको रोकना उचित नहीं ।

९७०. **संदंशेन नवमालिकामवचिनोति ?** पद्मप्राभृतक पृ० १५५ ॥

संडासी से नवमालिका को चुनते हो ? कोमल के प्रति कठोर व्यवहार नहीं करना चाहिये ।

९७१. **सुमनसो मुसलैर्मा क्षौत्सीः ।** पादताडितक पृ० १५५ ॥

पुष्पों को मूसलों से मत कूटो । कोमल के प्रति कठोर व्यवहार नही करना चाहिये ।

९७२. **सूर्यं यजन्ति दीपैः समुद्रमद्भिर्वसन्तमपि पुष्पैः ।**
पद्मप्राभृतक श्लोक ११ ॥

सूर्य की उपासना दीपकों से, समुद्र की जलों से और बसन्त की पुष्पों से नहीं करनी चाहिये। जिसके पास जो वस्तु प्रचुर है, वह उसके देने से प्रसन्न नहीं होता।

९७३. स्वपञ्जनः किं न खलु प्रलपसि ? वेणीसंहार पृ० ४८ ॥

स्वप्न में व्यक्ति क्या प्रलाप नहीं करता ? स्वप्न के प्रलाप पर विश्वास नही करना चाहिये।

(१९३) व्यसन—

९७४. व्यसनित्वान्नरः क्षीणः परिच्छदमिवात्मनः।

पञ्चरात्र १.१८ ॥

व्यसन में पड़ा हुआ व्यक्ति अपनी सामग्रियों के समान ही निरन्तर क्षीण होता जाता है।

(१९४) शङ्का—

९७५. सर्वथा शङ्कनीयः रात्रिच्छन्नः परगृहप्रवेशः।

अविमारक पृ० ५० ॥

रात्रि में छिप कर दूसरों के घर में प्रवेश करना सर्वथा शंका के योग्य है।

९७६. स्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशङ्कया।

अभिज्ञानशाकुन्तल ७.२४ ॥

अन्धा व्यक्ति सिर पर भी पड़ी हुई माला को सर्प की आशंका से दूर फेंक देता है। शंकालु स्वभाव का व्यक्ति शुभ को भी अशुभ समझ कर दूर फेंक देता है।

९७७. **स्वदोषैर्भवति शङ्कितो मनुष्यः ।**

चारुदत्त ४.६, मृच्छकटिक ४.२ ॥

मनुष्य अपने दोषों से ही शंकित होता है ।

[१९५] शकुन-अपशकुन—

९७८. **अकुशलदर्शनाः स्वप्नाः देवानां प्रशंसया कुशलपरिणामा भवन्ति ।** **वेणीसंहार पृ० ४८ ॥**

अशुभ स्वप्न देवताओं की प्रशंसा से शुभ परिणाम वाले हो जाते हैं ।

९७९. **ग्रहाणां चरितं स्वप्नो निमित्तान्युपयाचितुम् ।**
फलन्ति काकतालीयं तेभ्यः प्राज्ञो न बिभ्यति ॥

वेणीसंहार २.१४ ॥

ग्रहों की गति, शुभ या अशुभ और मनौतियां संयोगवश ही सत्य होती हैं । बुद्धिमान् लोग इनसे नहीं डरते ।

९८०. **पर्यायेण हि दृश्यन्ते स्वप्नाः कामं शुभाशुभाः ॥**

वेणीसंहार २.१३ ॥

शुभ-अशुभ स्वप्न समय-समय पर दीखते ही रहते हैं ।

९८१. **रुदितावसानं खलु स्वप्नं प्रशंसन्ति विचक्षणाः ।**

कौमुदीमहोत्सव पृ० २४ ॥

स्वप्न की समाप्ति रुदन से होने पर विद्वान् लोग उसको अच्छा मानते हैं ।

[१९६] शक्ति के अनुरूप कार्य करना—

६८२. यः आत्मबलं ज्ञात्वा तुलितं भारं वहति मनुष्यः ।
तस्य स्खलनं न जायते न च कान्तारगतो विपद्यते ।।

मृच्छकटिक २.१४ ।।

जो अपने सामर्थ्य को जान कर उसके अनुसार भार को वहन करता है, उसका पतन नही होता और वह दुर्गम स्थानों पर भी विपत्ति में नही पड़ता ।

[१६७] शरणागत-रक्षा—

६८३. अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं
शमयति च परितापं छायया संश्रितानाम् ।

अभिज्ञानशाकुन्तल ५.७ ।।

वृक्ष अपने शिखर पर तीव्र गर्मी का अनुभव करता है, परन्तु आश्रम में आने वालों के संताप को अपनी छाया से शान्त करता है। महान् व्यक्ति स्वयं कष्ट सहन करके भी आश्रितों की रक्षा करते हैं

६८४. अपि प्राणानहं जह्यां न तु त्वां शरणागतम् ।

मृच्छकटिक ७.६ ।।

मैं प्राणों को भी छोड़ सकता हूं, परन्तु शरणागत को नहीं ।

६८५. अभयमभयं भयार्तानाम् ।   चण्डकौशिक पृ० ६१ ।।

भय से पीडितों के लिये अभय हो अभय हो ।

६६४. आपन्नभीतिहरणं व्यवसायिनां हि प्राणास्तृणं विपुलसत्वसहायभाजाम् ।   हनूमन्नाटक १४.२७ ।।

प्रबल बल से सहायता करने वाले दृढ निश्चयी जन शरण में आये हुये व्यक्ति के भय को दूर करते हैं और प्राणों को तृण के समान तुच्छ समझते हैं ।

९८७. आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिताः खलु, पौरवाः ।

अभिज्ञानशाकुन्तल २.१६ ॥

पुरुवंशी राजा शरणागतों को अभय देने रूप यज्ञों में दीक्षित होते हैं ।

९८८. आर्तं कण्ठगतप्राणं परित्यक्तं स्वबन्धुभिः ।
त्राये नैनं यदि ततः कः शरीरेण मे गुणः ॥

नागानन्द ४.११ ॥

कण्ठगत प्राण वाले तथा अपने बन्धुओं से परित्यक्त पीडित व्यक्ति की यदि मैं रक्षा नहीं करता, तो मेरे शरीर धारण करने से क्या लाभ है ?

९८९. त्यजति किल तं जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च ।
भवति च सदोपहास्यो यः खलु शरणागतं न रक्षति ॥

मृच्छकटिक ६.१८ ॥

उसको विजयश्री छोड़ देती है, मित्र और बन्धु छोड़ देते हैं और वह सदा उपहास का पात्र होता है, जो शरणागत की रक्षा नहीं करता ।

९९०. भीताभयप्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य ।
यदि भवति भवतु नाशस्तथापि लोके गुण एव ॥

मृच्छकटिक ६.१९ ॥

भयभीत व्यक्ति को अभय प्रदान करते हुये परोपकार में आनन्द लेने वाले व्यक्ति का यदि विनाश हो जाता है तो हो जावे । संसार में इसको गुण ही माना जाता है ।

९९१. शत्रुः कृतापराधः शरणमुपेत्य पादयोः पतितः ।
शस्त्रेण न हन्तव्यः उपकारहतस्तु कर्तव्यः ॥

मृच्छकटिक १०.५५ ॥

अपराध करने वाला शत्रु भी यदि आकर पैरों में गिरता है तो उसको शस्त्र से न मारकर उस पर उपकार ही करना चाहिये ।

(१६८) शिव—

६६२. अथ स्वस्थाय देवाय नित्याय हृतपाप्मने ।
त्यक्तक्रमविभागाय चैतन्यज्योतिषे नमः ॥
महावीरचरित २.३८ ॥

उस चैतन्य ज्योति रूप शिव देवता के लिये नमस्कार है, जो अपने में ही स्थित है, नित्य है, पापों को नष्ट करता है तथा सृष्टिक्रम के विभाग से रहित है ।

६६३. कण्ठे विषं विकटवेषकरे करोटिमंसे गजाजिनमुरस्युरगं करोषि ।
कर्णे करोषि वरुणालयसारगर्भं लाटीललाटतटसुन्दर-
मिन्दुखण्डम् ॥ कौमुदीमहोत्सव ४.३ ॥

शिव के कण्ठ में विष, विकट वेष वाले हाथ में खप्पड़, वक्षःस्थल पर गजचर्म और कानों में समुद्र का सारभूत तथा लाट देश की रमणियों के ललाटों के समान सुन्दर चन्द्रखण्ड रहता है ।

६६४. दिगम्बरो वहति भुजङ्गभूषणं कपालवान् कलयति दाम
कोणपम् ।
वृषप्रियो रचयति भस्मगुण्ठनामुमापतेश्चरितमचिन्त्यकारणम् ॥
बालभारत २.३ ॥

शिव दिगम्बर रहते हैं, सांपों के आभूषण धारण करते हैं, खप्पड़ लिये रहते हैं, मुर्दों की मालायें रखते हैं, बैल पर सवारी करते हैं, और राख का लेप करते हैं । शिव के चरितों के कारण को विचारा नहीं जा सकता ।

६६५. प्रविलम्बभुजङ्गमभोगहारं शशिलेखास्मितवज्जटाकिरीटम् ।
भगवन्तमुपेत्यमभ्यपश्यं गिरिशं भस्मविलेपनावदातम् ॥
वीणावासवदत्त १७ ॥

शिव के शरीर पर लम्बे सर्पों की मालायें रहती हैं, जटाओं पर चन्द्रमा की

कला से शोभित किरीट है और उनका शरीर भस्म के लेप से शुभ्र रहता है।

६६६. **ममापि च क्षपयतु नीललोहितो पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः।**
अभिज्ञानशाकुन्तल ७.३५ ॥

सर्व व्यापक शक्ति वाले स्वयंभू शिव मेरे पुर्नजन्म को नष्ट करके मोक्ष प्रदान करें।

६६७. **या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री**
ये द्वे कालं विधतः श्रुतिविषयगुणा यया स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वभूतप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥
अभिज्ञानशाकुन्तल १.१ ॥

जो विधाता की प्रथम रचना है (जलरूप), जो विधिपूर्वक आहुत हवि का वहन करता है (अग्निरूप), जो होत्री है (होतारूप), जो दोनों समयों को धारण करता है (सूर्य और चन्द्ररूप), कानों का विषय होकर जो सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित है (आकाशरूप), जिसको सभी प्राणियों की उत्पत्ति का कारण माना जाता है (पृथिवीरूप) और जिससे सभी प्राणी जीवित रहते हैं (वायुरूप), इस प्रकार आठ रूपों द्वारा प्रत्यक्ष रहने वाले शिव आप सबकी रक्षा करें।

६६८. **शम्भुश्चिरं तव करोतु महाभिषेकम्। कौमुदीमहोत्सव ५.१६ ॥**

शिव तुम्हारे राज्याभिषेक की चिरकाल तक रक्षा करें।

(१९९) शिष्टाचार—

६६९. **अनुचित उपचारो हृदयस्य परिभवादपि दुःखमुत्पादयति।**
मुद्राराक्षस पृ० ३० ॥

अनुचित शिष्टाचार हृदय में अपमान से भी अधिक दुःख उत्पन्न करता है।

१०००. अनुल्लङ्घनीयः समुदाचारः। वेणीसंहार पृ० २०६॥

शिष्टाचार का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

(२००) शुभ आकृति—

१००१. न खलु ईदृशी आकृतिर्वैधव्यदुःखमनुभवति।

नागानन्द पृ० १६१॥

इस प्रकार की शुभ आकृति वैधव्य का दुःख अनुभव नहीं कर सकती।

१००२ भिद्यते वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य ?

उत्तररामचरित पृ० ३२१॥

इस प्रकार की शुभ आकृति सदाचार से च्युत नहीं हो सकती।

(२०१) शुभ आरम्भ—

१००३. आरम्भरमणीयानि कल्याणानि भवन्ति।

विद्धसालभञ्जिका पृ० १०६॥

आरम्भ में रमणीय कार्य कल्याणकारी होते हैं।

(२०२) शैशव—

१००४. अति हि नाम मुग्धः शिशुजनः। उत्तररामचरित पृ० ४३४॥

बच्चे बहुत भोले होते हैं।

१००५. **अनपराद्धं किल शैशवम् ।** **चण्डकौशिक पृ० १०६ ॥**

बचपन अपराधी नहीं होता ।

१००६. **बालाः परप्रत्ययाः ।** **आश्चर्यचूडामणि ५.१८ ॥**

बच्चे दूसरों पर विश्वास कर लेते हैं ।

१००७. **सुलभसौख्यमिदानीं बालत्वं भवति ।**

उत्तररामचरित पृ० ३१६ ॥

बचपन में सुख सुलभ होता है ।

(२०३) शौर्य —

१००८. **देशकालावस्थापेक्षि खलु शौर्यं नयवादिनाम् ।**

दूतवाक्य पृ० २६ ॥

नीतिज्ञों की शूरता देश और कालकी अवस्था की अपेक्षा करती है ।

(२०४) श्यालभार्या—

१००९. **श्यालभार्या अर्धभार्या इति भणिता ।**

विद्धसालभञ्जिका पृ० १०४ ॥

साले की पत्नी आधी पत्नी कही जाती है ।

(२०५) श्रेयसाकांक्षा—

१०१०. **अनतिक्रमणीयानि श्रेयांसि । अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४६४ ॥**

कल्याणों का उल्लंघन नहीं करना चाहिये ।

१०११. पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ।

अभिज्ञानशाकुन्तल ७ १३ ॥

कल्याण का पहले तिरस्कार करना दुःख में परिणत हो जाता है ।

१०१२. सन्तुष्टस्यापि जनस्य न त्वमृते पर्याप्तिरस्ति ।

पद्मप्राभृतक पृ० ४२ ॥

सन्तुष्ट व्यक्ति को भी अमृत को प्राप्त करने में सन्तोष नहीं होता ।

(२०६) संकल्प—

१०१३. प्रद्वेषो बहुमानो वा संकल्पादुपजायते ।

स्वप्नवासवदत्त १.७ ॥

द्वेष या आदर संकल्प से ही उत्पन्न होता है ।

(२०७) संगठन—

१०१४. क्षुद्रैरपि संभूय भूयोभिरेको महान् सुकरः कदर्थयितुम् ।

अनर्घराघव पृ० २६२ ॥

बहुत से छोटे दुर्बल भी मिल कर महाशक्तिशाली को पीडित कर सकते हैं ।

१०१५. पिपीलिकापन्नगन्याय–। बालरामायण पृ० ५६६ ॥

अनेक चीटियाँ मिल कर सर्प को खा सकती हैं ।

(२०८) संयोग-अनुगुण—

१०१६. कमलिनीबद्धानुरागोऽपि मधुकरो मालतीं प्रेक्ष्याभिनवर-

सास्वादलम्पटः कुतस्तामनासाद्य स्थितिं करोति ?

प्रियदर्शिका पृ० ४५ ॥

कमलिनी के प्रति प्रेम करने वाला भी भौंरा मालती को देख कर नव रस के आस्वादन की इच्छा करता हुआ उसको विना पाये कहां रह सकता है ? अनुगुण को देखकर उसको पाये विना चैन नहीं पड़ता।

१०१७. **किं मधुमथनो वक्षःस्थलेन लक्ष्मीमनुद्वहन् निवृतो भवति ?**

नागानन्द पृ० ६४ ॥

लक्ष्मी को वक्ष में धारण किये विना क्या विष्णु को शान्ति प्राप्त हो सकती है ? अनुगुण को प्राप्त किये विना शान्ति नहीं मिलती।

१०१८. **कोन्यश्चन्द्रतः समुद्रवर्धननिष्टः ? कर्पूरमञ्जरी पृ० ११६ ॥**

समुद्र को चन्द्रमा के अतिरिक्त कौन बढ़ा सकता है ? अनुगुण का मिलन ही प्रसन्नता का कारण होता है।

१०१९. **गुणवान् खलु गुणवतां सन्निकर्षः। पादताडितक पृ० २१९ ॥**

गुणियों का मिलन निश्चय से गुणसम्पन्न होता है।

१०२०. **चन्द्रोदये श्च्योतति चन्द्रकान्तः। कुन्दमाला ५.१० ॥**

चन्द्रमा का उदय होने पर ही चन्द्रकान्त मणि से रस बहता है। अनुगुण व्यक्ति का मिलन ही प्रसन्नता का कारण है।

१०२१. **चिरात् खलु युक्तकारी विधिः स्यात्। नागानन्द पृ० ४९ ॥**

विधाता देर से ही योग्य का मिलन योग्य से कराते हैं।

१०२२. **तप्तेन तप्तमयसा घटनाय योग्यम्।**

विक्रमोर्वशीयम् २.१५ ॥

गरम लोहे का गरम लोहे से ही मिलन हो सकता है।

न्यत्राभिरमते ।

१०२३. न कमलाकरमुज्झित्वा राजहंस्य~~स्मिन् अभिरमते~~ [न्यत्राभिरमते] ।

रत्नावली पृ० ४६ ॥

कमलों के जलाशय को छोड़ कर राजहंसी को आनन्द नहीं मिलता । अनुगुण के साथ मिलन ही आनन्द देता है ।

१०२४. न खलु मृगलाञ्छनमन्तरेण अन्यो मृगाङ्कमणिपुत्तलीं प्रस्वेदयति । कर्पूरमञ्जरी पृ० २३० ॥

चन्द्रमा के अतिरिक्त कोई भी चन्द्रकान्त मणि की पुतली को प्रस्वेदित नहीं करता । अनुगुण व्यक्ति से मिलन ही आनन्द का हेतु है ।

१०२५. न खलु मृगलाञ्छनमुज्झित्वा अन्येन शशिकान्तपुत्रिका बद्धनिर्झराः प्रहृष्यन्ति । विद्धसालभञ्जिका पृ० ५१ ॥

चन्द्रमा को छोड़ कर चन्द्रकान्त मणि की पुतली रस को बहाती हुई प्रसन्न नहीं होती । अनुगुण व्यक्ति का मिलन ही आनन्द का हेतु है ।

१०२६. न हि तरणिकरस्पर्शादन्यो व्याधिरिन्दीवरस्य ।

बालरामायण पृ० २३६ ॥

सूर्य की किरणों के स्पर्श से ही कमल खिलते हैं । अनुगुण संयोग ही आनन्द का हेतु है ।

१०२७. प्रावृण्णिरोधमुक्ता शरच्चन्द्रिका कथमनासाद्य कुमुदाकरं तिष्ठति । तपतीसंवरण पृ० २६ ॥

वर्षा के आवरण से मुक्त शरद ऋतु की चाँदनी कुमुदों को प्राप्त किये विना कैसे रह सकती है ? अनुकूल गुण वाले व्यक्ति से मिलन की उत्कण्ठा स्वाभाविक है ।

१०२८. मेघावगूढमपि चन्द्रमसं कुमुद्वतीप्रबोधः सूचयति ।

पद्मप्राभृतक पृ० ५५ ॥

मेघों से ढके हुये भी चन्द्रमा की सूचना कुमुदनियों का विकास दे देता है। अनुकूल व्यक्ति ओझल होते हुये भी प्रसन्नता का कारण है।

१०२९. **युज्यते चम्पकलतायाः कस्तूरीकर्पूरैरालवालपूरणम्।**
कर्पूरमञ्जरी पृ० ६८॥

चम्पक की लता के आलवाल को कस्तूरी और कपूर से भरना उचित है। अनुगुण का संयोग ही गुणों की वृद्धि करता है।

१०३०. **रत्नं रत्नेन संगच्छते।** **मृच्छकटिक पृ० ३४॥**

रत्न का रत्न से मिलन अच्छा होता है।

१०३१. **सदृशः संयोगः स्थावरोऽस्तु।** **धूर्तविटसंवाद पृ० ८६॥**

सदृश व्यक्तियों का संयोग स्थिर होवे।

१०३२. **सदृशसंयोगी हि भगवान् मदनः।** **धूर्तविटसंवाद पृ० ७०॥**

भगवान् कामदेव समान गुण वालों का मिलन कराते हैं।

१०३३. **सदृशाः सदृशे रज्यन्ते।** **प्रियदर्शिका पृ० ५७॥**

समान गुण वाले समान गुण वालों से मिलन में आनन्द पाते हैं।

१०३४. **समप्रेमरसं समरूपयौवनं समविलासविशिष्टम्।**
समदुःखसुखं च जनं समपुण्यैर्जनो लभते॥
बालरामायण ५.१७॥

समान प्रेम करने नाले, समान रूप और यौवन वाले, समान विलासों से सम्पन्न और समान दुःख-सुख वाले व्यक्ति को मनुष्य समान पुण्यों से ही प्राप्त करता है।

१०३५. **समागमो भवति पुण्यवताम्।** **नागानन्द २.१४॥**

पुण्यशालियों का ही परस्पर मिलन होता है।

१०३६. **सर्वथा सदृशयोगेषु निपुणः प्रजापतिः ।**

पादताडितक पृ० २३९ ॥

विधाता सब प्रकार से समान गुण वालों का मिलन कराने में निपुण है ।

१०३७. **सागरमुज्झित्वा कुत्र वा महानदी अवतरति ।**

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २३६ ॥

बड़ी नदी समुद्र को छोड़ कर और कहाँ उतरती है । गुणवती युवती गुणी पुरुष का ही वरण करती है ।

(२०९) संयोग-विपरीत—

१०३८. **कष्टं भो कोकिलाः कौशिकमनुवर्तन्ते ।**

पादताडितक पृ० १५४ ॥

कष्ट की बात है कि कोकिलें उल्लू का अनुसरण कर रही हैं ।

१०३९. **केतकीकुसुमवासितस्य खदिरस्यान्यो गन्धोद्गारः ।**

विद्धसालभञ्जिका पृ० ७० ॥

केतकी के पुष्पों से सुवासित खदिर में अन्य प्रकार की गन्ध आती है । गुण-हीन से मिलन होने पर गुणी व्यक्ति के गुण भी विकृत हो जाते हैं ।

१०४०. **कोकिला स्वभावखरबिल्वपादपमाश्रिता ।**

पद्मप्राभृतक पृ० १९ ॥

कोयल ने स्वभाव से कठोर बिल्व वृक्ष का आश्रय लिया । गुणहीन का आश्रय लेना गुणी व्यक्ति के लिये अनुचित है ।

१०४१. **क्व पुनर्मालतीकलिका दर्भगुणग्रथनाकदर्थनां क्षमते ?**

बालरामायण पृ० ३७९ ॥

मालती की कली दर्भ की डोरी में गूंथे जाने को कैसे सहन कर सकती है ?

गुणहीन से मिलन होने पर गुणी को कष्ट होता है।

१०४२ क्षीराहुति चिताग्निः कथमर्हति ?

आश्चर्यचूडामणि पृ० २४० ॥

चिता की अग्नि में दूध की आहुति कैसे योग्य हो सकती है ? गुणी व्यक्ति का गुणहीन से संयोग किसी प्रकार भी उचित नहीं।

(२१०) संसार के भोग—

१०४३. किमपि कन्दलितानुरागाः संसारभोगाः।

बालरामायण पृ० १६६ ॥

संसार के भोगों में अनुराग विकसित रहता है।

(२११) सज्जन—

१०४४. अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः। अभिज्ञानशाकुन्तल ५.१२ ॥

सज्जन पुरुष समृद्धि पाकर भी उद्दण्ड नहीं होते।

१०४५. कदापि सत्पुरुषाः शोकवक्तव्याः न भवन्ति।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४०८ ॥

सज्जन पुरुष कभी भी शोक की बातें नहीं करते।

१०४६. निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम्।

मुद्राराक्षस २.१८ ॥

सज्जन मनुष्यों का यह कुल का व्रत है कि वे स्वीकार किये गये उत्तरदायित्व को अवश्य पूरा करते हैं।

१०४७. प्रियप्राया वृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद् वा तदिदमविपर्यासितरसं
रहस्यं साधूनामनुपधि विशुद्धं विजयते ॥

उत्तररामचरित २.२ ॥

सज्जनों का व्यवहार प्रायः प्रिय होता है, वाणी मधुर और नियन्त्रित होती है, बुद्धि कल्याण करने वाली होती है, परिचय प्रशंसनीय होता है। चाहे प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष, उनका व्यवहार एक सा रहता है। उनका कपटहीन चरित्र विशुद्ध होता है ।

१०४८. विभवे भोजने दाने तिष्ठन्ति प्रियवादिनः ।
विपत्तौ चागतेऽन्यत्र दृश्यन्ते खलु साधवः ॥

हनूमन्नाटक ६.१६ ॥

सज्जन पुरुष समृद्धि में, भोजन में और दान देने में प्रिय बोलने वाले होते हैं। विपत्ति आने पर अन्य प्रकार के अर्थात् गम्भीर दिखाई देते हैं।

१०४९. सतां केनापि कार्येण लोकस्याराधनं व्रतम् ।

उत्तररामचरित १.४१ ॥

सज्जनों का यह व्रत रहता है कि वे किसी भी कार्य से लोक की आराधना करें ।

१०५०. सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ।

मालविकाग्निमित्र १.२ ॥

सज्जन पुरुष स्वयं परीक्षा करके किसी कार्य को करते हैं। मूर्ख मनुष्य दूसरों के विश्वास पर चलाया जाता है ।

(२१२) सत्कार—

१०५१. गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्तारः सुलभाः लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ।
स्वप्नवासवदत्त ४.६ ॥

बड़े बड़े विशाल गुणों के कारण सत्कार करने वाले तो नित्य सुलभ हैं, परन्तु उन गुणों के जानकार दुर्लभ हैं ।

१०५२. सत्कारधनाः खलु सज्जनाः कस्य न भवति चलाचलं धनम् ।
यः पूजयितुं जानाति स पूजाविशेषमपि जानाति ।
मृच्छकटिक २.१५ ॥

सत्कार करना ही निश्चय से सज्जनों का धन है । चंचल धन किसके पास नहीं होता । जो दूसरों का सत्कार करना नहीं जानता, वह अपने प्रति भी सत्कार को नहीं जान सकता ।

१०५३. सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतमुत्पादयति ।
स्वप्नवासवदत्त पृ० १५८ ॥

आदर पूर्वक किया गया सत्कार प्रीति को उत्पन्न करता है ।

(२१३) सत्संगति—

१०५४. आकल्पान्तं च भूयात् स्थिरसमुचिता संगतिः सज्जनानाम् ।
प्रियदर्शिका ४.१२ ॥

प्रलय काल पर्यन्त सज्जनों की संगति स्थिर और समुचित रहे ।

१०५५. मन्दोऽप्यमन्दतामेति संसर्गेण विपश्चितः ।
मालविकाग्निमित्र २.७ ॥

विद्वान् मनुष्य के संग से मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है ।

१०५६. सतां सद्भिः सङ्गः कथमपि हि पुण्येन भवति ।

उत्तररामचरित २.११ ॥

सज्जन मनुष्य के साथ सज्जनों की संगति किन्हीं पुण्यों से होती है ।

१०५७. सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति ।

उत्तररामचरित २.११ ॥

सत्संग के अनन्तर होने वाली मृत्यु भी उद्धार कर देती है ।

(२१४) सत्य और प्रतिज्ञापालन—

१०५८. अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम् ।

मृच्छकटिक ३.२६ ॥

चरित्र को भ्रष्ट करने वाले झूठ को नहीं कहना चाहिये ।

१०५९. प्रतिज्ञापालनं धर्मः । सर्वापेक्षया सत्यप्रतिज्ञता च बलवती ।

महावीरचरित पृ० १६७ ॥

प्रतिज्ञा का पालन करना धर्म है । अन्य सबकी अपेक्षा सत्य प्रतिज्ञा बलवती है ।

१०६०. मृतेऽपि हि नराः सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठन्ति ।

पञ्चरात्र ३.२५ ॥

मर जाने पर मनुष्य अपने सत्यरूपी यश के रहने पर ही जीवित रहते हैं ।

१०६१. सत्यसन्धाः हि रघवः । महावीरचरित ४.४८ ॥

रघुवंशी सत्यप्रतिज्ञ होते हैं ।

१०६२. सत्या प्रतिज्ञा हि सदा कुरूणाम् । पञ्चरात्र १.४६ ॥

कुरुवंशियों की प्रतिज्ञा सदा सत्य होती है।

१०६३. सत्येन सुखं लभ्यते सत्यालापे च न भवति पातकम् ।
सत्यमिति द्व्यक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय ॥

मृच्छकटिक ६.३५ ॥

सत्य से सुख प्राप्त होता है और सत्य बोलने पर पाप नहीं लगता । सत्य में नष्ट न होने वाले दो अक्षर हैं । सत्य को झूठ से मत छिपाओ ।

(२१५) सफलता—

१०६४. अनिर्वेदः सिद्धेर्मूलम् । बालरामायण पृ० ६ ॥

उदासीन न रहना ही सफलता का मूल है ।

१०६५ किमसाध्यं वैदग्ध्यस्य ? बालरामायण पृ० ३४३ ॥

चतुर मनुष्य के लिये कोई कार्य असाध्य नहीं है ।

१०६६. क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे ।

हनूमन्नाटक ७.७ ॥

महान् व्यक्ति को कार्य में सफलता अपने बल के कारण मिलती है, उपकरणों से नहीं ।

१०६७. नीतितन्त्रे द्वयं दृष्टं सिद्धये कृत्यवस्तुनः ।
समानः कार्ययोगश्च प्रभुशक्तिश्च निश्चला ॥

बालरामायण ६.१ ॥

नीतिशास्त्र में कहा गया है कि कार्य की सफलता के लिये दो वस्तुयें आवश्यक हैं—कार्यों में समानता का होना और प्रभुशक्ति का स्थिर रहना ।

१०६८. मन्त्रोत्साहसम्पन्नानामपि प्रभुशक्तिमपेक्षन्ते सिद्धयः ।

अनर्घराघव पृ० २५३ ॥

मन्त्रशक्ति और उत्साहशक्ति के होने पर भी सफलता के लिये प्रभुशक्ति की अपेक्षा होती है।

१०६९. यथाक्रममारब्धाः क्रियाः विद्वद्भिरनपहास्याः सफलाश्च भवन्ति। वीणावासवदत्त पृ० २६ ॥

क्रम के अनुसार आरम्भ होने पर ही कार्य विद्वानों द्वारा उपहसनीय नही होते तथा सफल होते हैं।

१०७०. विजिगीषोरदीर्घसूत्रता हि कार्यसिद्धेरवश्यंभावः।

अनर्घराघव पृ० २७८ ॥

विजय प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले के लिये यह आवश्यक है कि वह सोच-विचार में विलम्ब न करे।

१०७१. शास्त्रे प्रतिष्ठा सहजश्च बोधः प्रागल्भ्यमभ्यस्तगुणा च वाणी।
कालानुरोधः प्रतिभानवत्वमेते गुणाः कामदुघाः प्रसिद्धाः ॥

मालतीमाधव ३.११ ॥

कामनाओं को पूरा करने एवं कार्य की सफलता के लिये ये गुण होने चाहिये शास्त्रों का आदर करना, स्वाभाविक ज्ञान होना, चतुराई, उत्तम गुणसम्पन्न वाणी, समय के अनुकूल कार्य करना और नव प्रतिभाशाली होना।

१०७२. श्रुतमन्त्रसंरक्षणं खलु कार्यसिद्धेः कारणम्।

विद्धसालभञ्जिका पृ० ३४ ॥

सुनी गई मन्त्रणा की रक्षा करना ही कार्य की सफलता में कारण है।

१०७३. साध्यापेक्षः साधनपरिग्रहः। आश्चर्यचूडामणि पृ० २५८ ॥

कार्य में सफलता के लिये साध्य के अनुरूप साधनों का संग्रह करना चाहिये।

१०७४. सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणाम्।
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ॥

प्रतिज्ञायौगन्धरायण १.१८ ॥

उत्साही मनुष्यों के लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं है। समुचित रीति से प्रारम्भ किये गये प्रयत्न सफल होते हैं।

(२१६) समय-औचित्य—

१०७५. अकालान्तरिता पूजा नाशयत्येव वेदनाम्।

पञ्चरात्र २.२८ ॥

समय को विना खोये तुरन्त किया गया सत्कार वेदना को नष्ट कर देता है।

१०७६. अकाले स्वस्थवाक्यं मन्युमुत्पादयति।

पञ्चरात्र पृ० ७२ ॥

असमय में कहा गया स्वस्थ वाक्य भी क्रोध को उत्पन्न करता है।

१०७७. अतिक्रान्तान्यर्हणीयसभाजनानि किल श्रेयसां परिपन्थीनि भवन्ति।

चण्डकौशिक पृ० ५६ ॥

आदरणीय व्यक्तियों का समय पर सत्कार न करना कल्याणों का शत्रु है।

१०७८. अतिक्रान्ते वस्तुनि साक्षीप्रत्ययपरतन्त्रा व्यवहाराः।

बालरामायण पृ० ७७ ॥

समय व्यतीत होने पर व्यवहारों में साक्षियों के आधीन रहना पड़ता है।

१०७९. अन्यः वक्रोक्तिकालः अन्यः कालविचारकालः।

कर्पूरमञ्जरी पृ० ८३ ॥

वक्रोक्तियों का समय दूसरा है तथा कार्य के विचार करने का समय दूसरा है।

१०८०. अवस्था नाम खलु शत्रुमपि सुहृत्वेन कल्पयति।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० २८ ॥

समय की अवस्था शत्रु को भी मित्र बना देती है।

१०८१. अशुभस्य कालहरणं मुहूर्तमपि बहु मन्यन्ते नयविदः।

नागानन्द पृ० ५६ ॥

नीतिज्ञ लोग अशुभ के समय को क्षण भर के लिये भी दूर रखना उचित मानते हैं।

१०८२. अहो कालस्य माहात्म्यम्। अनर्घराघव पृ० १८८ ॥

समय का माहात्म्य आश्चर्यजनक है।

१०८३. काललाभो हि नयविदां प्रयोगग्रामं कन्दलयति।
प्रयोगतन्त्रा हि कार्यसिद्धिः। बालरामायण पृ० २४१ ॥

समय का लाभ लेने से नीतिज्ञों के प्रयोग प्रवृद्ध होते हैं। कार्यो की सफलता प्रयोग के आधीन है।

१०८४. किं गते सलिले सेतुबन्धेन। विद्धसालभञ्जिका पृ० ११५ ॥

जल की बाढ़ निकल जाने पर बांध बाँधने से क्या लाभ है ? समय पर कार्य करने से ही सफलता होती है।

१०८५. किं तथा क्रियते वीर कालान्तरगतश्रिया।
अरयो यं न पश्यन्ति बन्धुभिर्वा न भुज्यते ॥

हनूमन्नाटक १३.१५ ॥

हे वीर ! समय के बीत जाने पर प्राप्त होने वाली उस लक्ष्मी से क्या लाभ है ? जिसको शत्रु नही देखते और बन्धुजन उपभोग नहीं करते।

१०८६. गतः स कालो यत्रासीन्मुक्तानां जन्म वल्लिषु।
वर्तन्ते साम्प्रतं तासां हेतवः शुक्तिसम्पुटाः ॥

बालरामायण ३.२ ॥

वह समय व्यतीत हो गया है, जबकि मोती लताओं में लगते थे। अब वे

सीपियों में मिलते हैं। समय पर सुलभ होने पर ही वस्तुओं का संग्रह उचित है।

१०८७. जललिखितान्यक्षराणि कालान्तरे वाचयितुमुपक्रमते ?
सुभद्राधनञ्जय पृ० ३२ ॥

जल पर लिखे गये अक्षरों को समय बीत जाने पर पढ़ने का उपक्रम करते हो ? समय पर ही कार्य को समझ लेना उचित होता है।

१०८८. तपति प्रावृषि नितरामभ्यर्णजलागमो दिवसः।
रत्नावली पृ० १०८ ॥

प्रावृट् ऋतु में बहुत तपन होने का अर्थ है कि जल बरसने का समय बहुत निकट है। बहुत दुःख से पीडित होने के पश्चात् सुख की वर्षा हो सकती है।

१०८९. न खलु शरत्समीरमन्तरेण शेफालिका कुसुमोत्करं विकासयति।
कर्पूरमञ्जरी पृ० २३० ॥

शरद् ऋतु के विना शेफालिका के पुष्प नहीं खिलते। प्रत्येक कार्य समय पर ही फलीभूत होता है।

१०९०. न युक्तः सातिशये वस्तुनि कालातिक्रमः।
वीणावासवदत्त पृ० २० ॥

महत्वपूर्ण कार्य के लिये समय गंवाना उचित नही।

१०९१. प्रमादभीरुत्वाद् विवेकिनां कालक्षेपवत्यः सिद्धयः।
कौमुदीमहोत्सव पृ० ३ ॥

विवेकी जन प्रमादभीरु अर्थात् प्रमाद न करने वाले होते हैं, अतः वे समय पर सफल हो जाते हैं।

१०९२. सर्वमचिरादत्यायतं छिद्यते। पद्मप्राभृतक श्लोक १५ ॥

बहुत लम्बा खींचने से सभी नष्ट हो जाता है।

(२१७) सरस्वती—

१०६३. धातुश्चतुर्मुखीकण्ठशृङ्गाटकविहारिणी।
नित्यप्रगल्भवाचालामुपतिष्ठे सरस्वतीम्॥

अनर्घराघव १.११॥

विधाता के चार मुखों वाले कण्ठ रूपी चौराहे पर विहार करने वाली और सदा प्रगल्भ वाचाल सरस्वती की उपासना करता हूं।

१०६४. सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।

अभिज्ञानशाकुन्तल ७.३५॥

विद्या से महान विद्वानों की सरस्वती महिमा को प्राप्त होती है।

(२१८) सर्वकल्याणकामना—

१०६५. शिवमस्तु सर्वजगतां परहितनिरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखीभवतु लोकः॥

नागानन्द ५.४१॥

सम्पूर्ण लोकों का कल्याण हो, सभी प्राणी दूसरों का हित करने में निरत हों। दोष नष्ट हो जावें। संसार में सभी सुखी हों।

(२१९) सहायक की ग्राह्यता—

१०६६. अर्थं सप्रतिबन्धं प्रभुरधिगन्तुं सहायवानेव।

मालविकाग्निमित्र १.९॥

रुकावट से युक्त कार्य को भी राजा सहायक की सहायता से पूरा कर सकता है।

१०६७. सर्वज्ञस्यापि एकाकिनो निर्णयाभ्युपगमो दोषाय।

मालविकाग्निमित्र पृ० २५ ॥

सर्वज्ञ व्यक्ति भी यदि अकेला निर्णय करता है तो वह निर्णय दोषयुक्त होता है।

(२२०) साम—

१०६८. सान्त्वं हि नाम दुर्विनीतानामौषधम्। पञ्चरात्र पृ० ३५ ॥

उद्दण्ड मनुष्यों की दवा समझाना ही है।

(२२१) सुख—

१०६६. अनिर्वेदप्रायाणि श्रेयांसि। विक्रमोर्वशीय पृ० २३० ॥

सुखी होने पर कल्याण होता है।

११००. निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः।

विक्रमोर्वशीय ३.२१ ॥

सन्तप्त व्यक्ति को वृक्ष की छाया सुख देती है।

११०१. बहुविघ्नानि सुखानि। अविमारक पृ० ८८ ॥

सुखों की प्राप्ति में बहुत विघ्न आते हैं।

११०२. सर्वः प्रार्थितमर्थमधिगम्य सुखी सम्पद्यते जन्तुः।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३३६ ॥

सभी प्राणी प्रार्थित वस्तु को प्राप्त करके सुखी होते हैं।

११०३. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते।

चारुदत्त १.३, मृच्छकटिक १.१० ॥

दुःखों के अनुभव के बाद ही सुख अधिक अच्छा लगता है।

सुख की अस्थिरता–

११०४. प्रायेण बान्धवसुहृत्प्रियसंगमादि सौदामिनीस्फुरणचञ्चलमेव सौख्यम्। मालतीमाधव ८.१४ ॥

बान्धव, मित्र और प्रिय जन से मिलन-सुख आदि विद्युत की चमक के समान चंचल होते हैं।

सुख के साथी–

११०५. परोऽपि बन्धुः समसंस्थितस्य। मृच्छकटिक १०.१६ ॥

सुख में स्थित व्यक्ति के शत्रु भी बन्धु हो जाते हैं।

११०६. सर्वः खलु भवति लोके लोकः सुखसंस्थितानां चिन्तायुक्तः।

मृच्छकटिक १०.१५ ॥

संसार में सुखी मनुष्यों की चिन्ता सब करते हैं।

(२२२) सुरा—

११०७. एषा भगवती वारुणी प्रत्यादेशो मण्डनानाम्, अनुनयः प्रणयकुपितानां पराक्रमो यौवनस्य जीवितं विभ्रमाणाम्।

मत्तविलास पृ० १२ ॥

यह भगवती वारुणी (सुरा) सभी अलंकारों की निषेध है, प्रणय में कुपितों को मनाने वाली है, यौवन का पराक्रम है और विलासों का जीवन है।

११०८. नित्यसन्निहिता भगवती सुरा देवी प्रतिहारगृहे ।
पादताडितक पृ० २२६ ॥

भगवती सुरा देवी प्रतिहारों के घर में सदा विद्यमान रहती है ।

११०९. मदनीयं खलु पुराणमधु । पद्मप्राभृतक पृ० २७ ॥

पुरानी मदिरा अधिक मादक होती है ।

१११०. विलासो नेत्राणां तरुणसपकारप्रियसखः ।
स गण्डूषः सीधुः । पादताडितक श्लोक १३५ ॥

मदिरा का गण्डूप (घूंट) नेत्रों का विलास है और पुराने साथियों का प्रिय मित्र है ।

(२२३) सूर्य—

११११. कल्याणानां त्वमसि महसां भाजनं विश्वमूर्ते
धुर्यां लक्ष्मीमिह मयि भृशं देव धेहि प्रसीद ।
यद्यत्पापं प्रतिजहि जगन्नाथ विश्वस्य तन्मे
भूयो भूयः वितर भगवन् भूयसे मङ्गलाय ॥
मालतीमाधव १.३ ॥

हे विश्वमूर्ते ! सूर्यदेव आप सभी महान् तेजों के कल्याणों के पात्र हो । हे देव ! आप मेरे प्रति प्रसन्न होइये और योग्य लक्ष्मी को प्रदान कीजिये । हे विश्व के स्वामी ! आप मेरे जो पाप हों, उनको नष्ट कीजिये । हे भगवन् ! आप मेरे लिये पुनः पुनः प्रचुर मंगल प्रदान कीजिये ।

(२२४) सेवक—

११११२. अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद् भक्तियुक्तेन कः
प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि हि भवेत् किं भक्तिहीनात् फलम् ।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणाः भूतये
ते भृत्याः नृपते कलत्रमितरे सम्पत्सु चापत्सु च ।।

मुद्राराक्षस १.१४ ।।

सेवक यदि भक्तियुक्त हो, परन्तु मूर्ख और कायर हो तो उससे क्या लाभ है ? यदि वह बुद्धि और पराक्रम से युक्त हो, किन्तु यदि भक्ति से रहित हो तो उसका भी कोई फल नहीं है । राजा के कल्याण के लिये जिन सेवकों में बुद्धि, पराक्रम और भक्ति ये तीनों गुण समाविष्ट हों, वे ही वस्तुतः सेवक हैं । अन्य सेवक तो सुख और दुःख में स्त्री के समान हैं ।

११११३. ऐश्वर्यादनपेतमीश्वरमयं लोकोऽर्थतः सेवते
तं गच्छन्त्यनु ये विपत्तिषु पुनस्ते तत्प्रतिष्ठाशया ।
भर्तुर्ये विलयेऽपि पूर्वसुकृतासङ्गेन निस्सङ्गया
भक्त्या कार्यधुरं वहन्ति बहवस्ते दुर्लभास्त्वादृशाः ।।

मुद्राराक्षस १.१३ ।।

ऐश्वर्य से सम्पन्न राजा की सेवा यह संसार धन के लिये करता है । जो सेवक विपत्तियों में भी उसका अनुसरण करते हैं, वे उसके पुनः प्रतिष्ठित होने की आशा में करते हैं । जो सेवक पहले किये गये उत्तम कार्यों के कारण आसक्ति रहित भक्ति से स्वामी के मर जाने पर भी उसके कार्य के भार का वहन करते हैं, वे सेवक दुर्लभ ही हैं ।

(२२५) सेवा का कष्ट—

१११४. तत्क्षणमपि निष्क्रान्ताः कृतदोषा इव विनापि दोषेण ।
प्रविशन्ति शङ्कमाना राजकुलं प्रायशो भृत्याः ।।

प्रियदर्शिका १.८ ।।

उसी समय बाहर निकले हुये, विना दोष के भी दोषी से होते हुये सेवक प्रायः राजकुल में डरते हुये प्रवेश करते हैं।

१११५. समग्रदुःखानां जननी भगवती सेवा।

तापसवत्सराज पृ० ६२॥

भगवती सेवा सभी दुःखों की माता है।

१११६. सेवां लाघवकारिणीं कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिं विदुः।

मुद्राराक्षस ३.१४॥

बुद्धिमानों का कहना है कि सेवा तुच्छ बना देने वाली है और कुत्ते की वृत्ति के समान है।

(२२६) स्त्री-अपहरण का कष्ट—

१११७. न च कलत्रापहरणादृते पुरुषस्य अपरं परिभवस्थानम्।

रामाभ्युदय पृ० १४॥

पत्नी के अपहरण के अतिरिक्त पुरुष के लिये अन्य अपमान-दुःख का स्थान नहीं है।

१११८. पराभवः स्त्रीहरणान्न चान्यः। **हनूमन्नाटक ५.६१॥**

स्त्री के अपहरण से बढ़ कर अन्य तिरस्कार नहीं है।

(२२७) स्थान-औचित्य—

१११९. अपरीक्षितो नाम देशः दुःखमुत्पादयति।

वीणावासवदत्त पृ० २०॥

अपरीक्षित स्थान दुःख उत्पन्न करता है।

११२०. **शिरसि भयं दूरे तत्प्रतीकारः।** मुद्राराक्षस पृ० ३४ ॥

भय तो सिर पर आ गया और उसको दूर करने का उपाय दूर स्थान पर है।

११२१. **शीर्षे सर्पः देशान्तरे वैद्यः।** कर्पूरमञ्जरी पृ० २२६ ॥

सांप सिर पर है और चिकित्सक दूसरे स्थान पर है।

(२२८) स्नेह—

स्नेह का पारस्परिक भाव–

११२२. **हृदयं त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्।**

उत्तररामचरित ६.३२ ॥

परस्पर के प्रीति के सम्बन्ध को हृदय ही जानता है।

स्नेह का सुख–

११२३. **न किञ्चिदपि कुर्वाणः सौख्यैः दुःखान्यपोहति।**
तत् तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः।

उत्तररामचरित २.१९, ६.५ ॥

जो जिसका प्रिय है, वह उसके लिये लिये कुछ भी न करता हुआ सामीप्य मात्र से सुखों को उत्पन्न करके दुःखों को दूर कर देता है।

स्नेह-गुणों के प्रति–

११२४. **को नाम धर्मविजयिनि जने न स्निह्यति ?**

बालरामायण पृ० ४८९ ॥

धर्मविजयी व्यक्ति के प्रति सभी स्नेह करते हैं।

स्नेह-तारामैत्रक–

११२५. **लौकिकानामुपचारस्तारामैत्रकं चक्षूरागः ।**

उत्तररामचरित पृ० ३६६ ॥

लोक में यह परम्परा है कि आंखों की पुतलियों में मित्रता होकर आंखों में प्रेम रहता है । इस मित्रता को तारामैत्रक कहते हैं ।

११२६. **समानवृत्तेरपि क्वचिदेव कस्यचित् तारामैत्रकम् ।**

अनर्घराघव पृ० २८ ॥

समान स्वभाव वालों में भी तारामैत्रक मैत्री कहीं किसी की होती है ।

स्नेह में कपट न होना–

११२७. **विशुद्धः शुद्धानां ध्रुवमनभिसन्धिप्रणयिनः ।**

अनर्घराघव १.५८ ॥

शुद्ध विचार वाले व्यक्तियों में कपट से रहित विशुद्ध स्नेह होता है ।

स्नेह में पक्षपात–

११२८. **अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया ।**
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति ॥

उत्तररामचरित ५.१७ ॥

बिना किसी निमित के जो स्नेह (पक्षपात) होता है, उसकी कोई रोकथाम नहीं है । वह स्नेहरूप तन्तु प्राणियों के हृदयों को सी देता है ।

११२९. **तिर्यञ्चोऽपि परिचयमनुरुन्धन्ते ।**

उत्तररामचरित पृ० २.२४ ॥

पशु-पक्षी भी परिचय के अनुरोध को मानते हैं ।

११३०. **मा परकीये स्नेहं कृत्वा अवबध्यस्व ।**

प्रतिज्ञायौगन्धरायण पृ० ७८ ॥

दूसरे के प्रति स्नेह करके अपने को बांधना उचित नहीं ।

११३१. यस्यां मनश्चक्षुषोर्निर्बन्धस्तस्यामृद्धिः ।

मालतीमाधव पृ० १०२ ॥

जिसके प्रति मन और आंखें बन्ध जाती हैं, उसके प्रति स्नेह होता है ।

स्नेह में बाह्य उपाधि या निमित्त का न होना–

११३२ न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।

उत्तररामचरित ६.१२ ॥

स्नेह बाह्य कारणों पर आश्रित नहीं होता ।

११३३. स्नेहश्च निमित्तसव्यपेक्षश्च विप्रतिषिद्धमेतत् ।

मालतीमाधव पृ० ५०, उत्तररामचरित पृ० ४०८ ॥

स्नेह हो और वह बाह्य कारणों की अपेक्षा रखता हो, ये दोनों बातें परस्पर विरुद्ध हैं ।

स्नेह में मिलन की आतुरता एवं विघ्न या समय को सहन न करना–

११३४. अहो नु खलु स्नेहदुर्बलस्य मनसो नित्यातुरता ॥

वीणावासवदत्त पृ० ३५ ॥

स्नेह से दुर्बल मन स्नेहपात्र के लिये सदा आतुर रहता है ।

११३५. दूरारूढः खलु प्रणयोऽसहनः । विक्रमोर्वशीय पृ० २१४ ॥

बहुत दूर तक पहुंचा हुआ स्नेह व्याघात को सहन नहीं कर सकता ।

११३६. न कालमपेक्षते स्नेहः । मृच्छकटिक पृ० २७० ॥

स्नेह समय की अपेक्षा नहीं करता ।

११३७. न प्रेम नव्यं सहतेऽन्तरायम् । विद्धसालभञ्जिका ३.५ ॥

नया प्रेम विघ्न को सहन नहीं करता है ।

११३८. प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति ।

रत्नावली ३.१५ ॥

बहुत बढ़े हुये प्रेम में होने वाली असावधानी असह्य होती है ।

स्नेह में योग्य-अयोग्य का विचार न होना—

११३९. किं स्नेहस्तुलयति गुणदोषान् ?

आश्चर्यचूडामणि पृ० १८ ॥

स्नेह गुण-दोषों का विचार नहीं करता ।

११४०. न हि स्नेहो युक्तायुक्तमनुरुणाद्धि ।

बालरामायण पृ० १४ ॥

स्नेह योग्य-अयोग्य का अनुरोध नहीं मानता ।

स्नेहवश कार्य की ओर अधिक ध्यान देना—

११४१. अतिस्नेहः खलु कार्यदर्शी । विक्रमोर्वशीय पृ० १७५ ॥

बहुत अधिक स्नेह के कारण मनुष्य कार्य की ओर अधिक देखता है ।

स्नेही के दूर होने पर अमंगल की आशंका—

११४२. अतिस्नेहः पापशङ्की । अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ३१८

बहुत अधिक स्नेह में स्नेहपात्र के दूर होने पर अमंगल की आशंका होती है ।

११४३. स्वगृहोद्यानगतेऽपि स्निग्धे पापं विशंक्यते स्नेहात् ।

नागानन्द ५.१ ॥

अपना स्नेहपात्र यदि घर के उद्यान में भी हो तो स्नेहवश अमंगल की आशंका होती है ।

स्नेहीजन द्वारा दुःख को बांट लेना—

११४४. प्रियसखीति भणसि न च दुःसंविभागं करोषीति युज्यत एतत् ? तापसवत्सराज पृ० ७२ ॥

प्रिय सखियों का परस्पर दुःख का बंटवारा करना उचित होता है।

११४५. स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २३६ ॥

स्नेही जन के बांट लेने पर दुःख की वेदना कम हो जाती है।

११४६. अस्ति क्वचित् केनचिदुपायेन परलोकगतः गम्यते।

तापसवत्सराज पृ० १२८ ॥

किसी भी उपाय से परलोक में गये प्रिय का अनुगमन करना चाहिये।

(२२९) स्नेहालिङ्गन—

११४७. रूक्षस्य वचसः परिष्वङ्गः शमीक्रिया। पञ्चरात्र १.४३ ॥

रूखे वचन से उत्पन्न खेद को आलिंगन करके शान्त करना चाहिये।

(२३०) स्वकीय को सुन्दर समझना—

११४८. सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० २०१ ॥

सभी अपने को सुन्दर समझते हैं।

(२३१) स्वकीय दोष को उद्घाटित न करना—

११४९. को नाम लोके स्वयमात्मदोषमुद्घाटयेन्नष्टघृणः सभासु।

दूतवाक्य १.१८ ॥

ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जो निर्दय होकर अपना दोष स्वयं प्रकाशित करेगा।

(२३२) स्वगृह में शक्तिशाली होना—

११५०. स्वके गृहे तावत् कुक्कुरोऽपि चण्डायते।

मृच्छकटिक पृ० ४४ ॥

अपने घर में तो कुत्ता भी पराक्रमी होता है।

(२३३) स्वीकीय शक्ति का विनाश होने पर तिरस्कृत करना—

११५१. सर्वः प्रायो भजति विकृतिं भिद्यमाने प्रतापे।

महावीरचरित २.४ ॥

अपना पराक्रम नष्ट होने पर सबको तिरस्कार मिलता है।

(२३४) स्वादिष्ट भोजन—

११५२. समधुसर्पिष्कं हि भोजनं सोपदंशमास्वाद्यतां भवति।

पद्मप्राभृतक पृ० ५ ॥

मधु और घी से युक्त सालन लगाया गया भोजन स्वादिष्ट हो जाता है।

(२३५) स्वाभाविक निन्दित कार्य को भी करना—

११५३. सहजं किल यद् विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम्।
पशुमारणकर्मदारुणोऽनुकम्पामृदुरेव श्रोत्रियः॥

अभिज्ञानशाकुन्तल ५.१ ॥

स्वाभाविक कार्य को निन्दित होने पर भी नहीं करना चाहिये। बलि के लिये पशु को मारने रूप कठोर कार्य को करने वाला ब्राह्मण कोमल स्वभाव का ही समझा जाता है।

(२३६) स्वाभाविक सौन्दर्य—

११५४. **किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्।**

अभिज्ञानशाकुन्तल १.१९ ॥

मधुर आकृति वालों के लिये सभी वस्तुये अलंकार हो जाती हैं।

११५५. **दूरीकृता खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः।**

अभिज्ञानशाकुन्तल १.१७ ॥

गुणों के द्वारा वन्य लताओं ने उद्यान की लताओं को तिरस्कृत कर दिया है। प्राकृतिक सौन्दर्य कृत्रिम सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक आकर्षक होता है।

११५६. **मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।**

अभिज्ञानशाकुन्तल १.१९ ॥

चन्द्रमा का कलंक भी उसके सौन्दर्य को बढाता है। सुन्दर वस्तु का हल्का दोष भी उसके सौन्दर्य में वृद्धि करता है।

११५७. **स्वभावरमणीयानि मण्डितानि अतिरमणीयानि भवन्ति।**

अविमारक पृ० ८६ ॥

स्वभाव से सुन्दर व्यक्ति को अलंकृत करने पर वह और भी अधिक सुन्दर हो जाता है।

११५८. **सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्।**

अभिज्ञानशाकुन्तल १.१९ ॥

सिवार से लिपटा भी कमल सुन्दर लगता है।

११५९. सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम ।

स्वप्नवासवदत्त पृ० ७५ ॥

सौन्दर्य सभी व्यक्तियों के मन को अच्छा लगता है ।

११६०. सर्वमलङ्कारो भवति सुरूपाणाम् । अविमारक पृ० ४७ ॥

सुन्दर व्यक्तियों के लिये सभी वस्तुयें अलंकार हैं ।

११६१. सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम । प्रतिमानाटक पृ० १२ ॥

सौन्दर्य होने पर उसके साथ के सभी पदार्थ सुन्दर लगते हैं ।

११६२. सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम् ।

अभिज्ञानशाकुन्तल पृ० ४०१ ॥

विशेष सुन्दर आकृतियां सभी अवस्थाओं में रमणीय लगती हैं ।

(२३७) स्वामिभक्ति—

११६३. अनुक्तकारिता हि प्रकाशयति मनोगतां स्वामिभक्तिम् ।

वेणीसंहार पृ० २३६ ॥

विना कहे ही कार्य कर देने से सेवक की मनोगत स्वामिभक्ति प्रकाशित होती है ।

११६४. असिमर्पयतोऽपि कण्ठदेशे सुजनः शंसति पथ्यमेव ।

आश्चर्यचूडामणि पृ० ५.२२ ॥

गले पर तलवार रख देने पर भी सज्जन व्यक्ति स्वामी के लिये हितकर बात को ही कहता है ।

११६५. आनयन्त्यं गुणेषु दोषेषु पराङ्मुखं कुर्वन्त्यै ।
अस्मादृशजनन्यै प्रणमामः स्वामिभक्त्यै ॥

मुद्राराक्षस ५.६ ॥

स्वामिभक्ति गुणों को लाती है और दोषों को दूर करती है। वह अच्छे सेवकों की माता है। वह प्रणाम के योग्य है।

११६६. किं हि दुष्करं स्वामिभक्तेः ? बालरामायण पृ० ३४३ ॥

स्वामिभक्ति से कौन-सा कठिन काम नहीं हो सकता ?

११६७. दुर्वारविनिपातोऽयं भर्तुराज्ञाव्यतिक्रमः।

चण्डकौशिक ५.१६ ॥

स्वामी के आदेश का उल्लंघन करना कठिन है तथा पतित करने वाला है।

११६८. न प्राणनिर्याणेऽप्यनुचितवाचो भवन्ति भृत्याः।

बालरामायण पृ० ७१ ॥

प्राणों के निकलने पर भी सेवक अपने स्वामी के प्रति अनुचित बात नहीं कहते।

११६९. प्रभुचित्तानुवर्तनं हि सेवकजनसिद्धविद्या।

बालरामायण पृ० १८ ॥

सेवकों के लिये सिद्ध विद्या यही है कि वे स्वामी के मन के अनुसार व्यवहार करें।

११७०. यद्यदाचरति स्वामी तत्करोम्यविचारितम्।

चण्डकौशिक ३.३५ ॥

स्वामी जो कहें, वह विना विचार किये करना चाहिये।

११७१. शासनास्खलनं भर्तुर्भृत्यस्य परमो गुणः।

चण्डकौशिक ३.१८ ॥

सेबक का यही परम गुण है कि वह स्वामी के आदेशों को पूरा करे।

११७२. स्वामिनो यथोद्दिष्टकारिता ननु परत्रेह च हितदुःखयोर्निदानम्। वीणावासवदत्त पृ० २६ ॥

स्वामी के कहने के अनुसार कार्य करने से परलोक तथा इस लोक में हित होता है और दुःखनष्ट होते हैं।

(२३८) स्वामी—

११७३. **अवसरसन्तोषणीयः स्वामिजनः । बालरामायण पृ० ४६३ ॥**

स्वामी को अवसर के अनुसार सन्तुष्ट करना चाहिये।

११७४. **परिपालना हि भृत्यान् स्वामिनः स्मारयति न गुणग्रामः ।**
बालरामायण पृ० ६२६ ॥

भृत्यों का पालन करना ही स्वामी के गुणों का स्मरण करता है, उसके गुण नहीं।

११७५. **स्वामी भृत्यापराधेन दण्डनीय इति स्थितिः ।**
बालरामायण ५.७० ॥

सेवक के अपराध के कारण स्वामी दण्डनीय होता है।

११७६ **सुजनः खलु भृत्यानुकम्पकः स्वामी निर्धनकोऽपि शोभते ।**
पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितः दुष्करः खलु परिणामदारुणः ॥
मृच्छकटिक ३.१ ॥

भृत्यों के प्रति कृपा करने वाला स्वामी निर्धन होते हुये भी शोभित होता है। परन्तु धन से गर्वित चुगलखोर स्वामी की सेवा कठिन है और वह परिणाम में कठोर होती है।

(२३९) स्वार्थरक्षा—

११७७. **स्वार्थः स्वयं चिन्त्यताम् । तापसवत्सराज १.६ ॥**

अपने स्वार्थ का स्वयं विचार करना चाहिये ।

(२४०) स्वावलम्बन—

११७८. **कर्तव्यानि खलु दुःखितैः दुःनिर्धारणानि ।**

उत्तररामचरित पृ० २३५ ॥

दुःखी व्यक्तियों द्वारा अपने दुःखों का निर्धारण स्वयं ही करना चाहिये ।

११७९. **स्वयमेव पर्यवस्थापयात्मानम् ।** तापसवत्सराज पृ० ४८ ॥

अपने आपको स्वयं संभाला जाता है ।

२४१) हनूमान्—

११८०. **कपिकटकभटानां गण्डगोपालनामा समरशिरसि धीरो योऽञ्जनायास्तनूजः ।**
दिशतु विशदलक्ष्मीं लक्ष्मणस्यात्मनः श्रीचरणनलिननत्या नित्यसत्योदयः श्रीः ॥ हनूमन्नाटक १३.३४ ॥

वानरों की सेना में जो गण्डगोपाल नाम से जाना जाता है, युद्धक्षेत्र में धैर्यशाली है, अंजना का पुत्र है, और जिसने लक्ष्मण के जीवन को प्रदान किया है, वह हनूमान् हमको विशद लक्ष्मी प्रदान करे। उसके चरण-कमलों में प्रणाम करने से सदा सत्य लक्ष्मी का उदय होता है ।

११८१. **हेलोल्लंघितवारिधिर्जनकजाविश्लेषशुष्यन्मनः**
कोशल्यासुतदैन्यपाटनपटुर्प्रस्तांशुभूमण्डलः ।
निर्दाघाखिलराक्षसेन्द्रनगरः सौमित्रिसंजीवना-
योत्खातौषधिपर्वतश्च मरुतः पुत्रो ध्वजे वर्तते ॥

हनूमन्नाटक १४.३ ॥

जिसने अनायास ही समुद्र को लांघ लिया था जिसने सीता के वियोग से सूखते हुये राम के मन की दीनता को दूर किया था, जिसने सूर्यमण्डल को ग्रस लिया था, जिसने राक्षसों की लंका को जला दिया था और लक्ष्मण को पुनः जीवित किया था और औषधि के पर्वत को उखाड़ा था, ऐसे महान् हनूमान् इस ध्वजा में हैं ।

(२४२) हितैषिता—

११८२. स एव स्निग्धो जनो यः पृष्टः परुषमपि हितं भणति ।

वेणीसंहार पृ० ६२ ॥

स्नेही वही है, जो पूछे जाने पर कठोर होते हुये भी हित की ही बात कहता है ।



परिशिष्ट-१

सुभाषितों के स्रोतोभूत नाटक—

१. दूतवाक्यम्-भास-बलदेव आचार्य द्वारा सम्पादित 'भासनाटकचक्रम्' प्रथम भाग सेचौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी प्रथम संस्करण।

२. कर्णभारम्- वही

३. दूतघटोत्कच- वही

४. मध्यमव्यायोग- वही

५. पञ्चरात्र- वही

६. उरुभङ्गम्- वही

७ अभिषेकनाटक- वही

८. बालचरित- वही

९. अविमारक- वही द्वितीय भाग

१०. प्रतिमानाटक- वही

११. प्रतिज्ञायौगन्धरायण- वही

१२. स्वप्नवासवदत्तम्- वही

१३. चारुदत्तम्- वही

१४. मृच्छकटिक-शूद्रक-श्रीनिवास शास्त्री द्वारा सम्पादित, साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ (१९७६ ई०)

१५. अभिज्ञानशाकुन्तल-कालिदास-डा० कृष्ण कुमार की टीका-प्रकाश बुक डिपो बरेली (१९७५ ई०)

१६. विक्रमोर्वशीयम्-कालिदास-सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित कालिदास ग्रन्थावली से। अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी द्वारा प्रकाशित (२०१९ वि०) तृतीय संस्करण।

१७. मालविकाग्निमित्र–कालिदास–पी. डी. शास्त्री द्वारा अनूदित। आत्माराम एण्ड सन्स काश्मीरी गेट दिल्ली (१९६४ ई०)
१८. मुद्राराक्षस–विशाखदत्त–आर. एस. बलिम्बे द्वारा सम्पादित, बम्बई।
१९. देवीचन्द्रगुप्तम्–विशाखदत्त–वी. राघवन् द्वारा सम्पादित 'शृंगारप्रकाश' में उद्धृत (१९६३ ई०)
२०. कौमुदीमहोत्सव–बिज्जिका–रामकृष्ण द्वारा सम्पादित त्रिवेन्द्रम् (१९१२ ई०)
२१. पद्मप्राभृतक–शूद्रक–डा० मोतीचन्द और डा० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित 'शृंगारहाट' से। हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय बम्बई (१९५९ ई०)
२२. उभयाभिसारिका–वररुचि– वही
२३. धूर्तविटसंवाद–ईश्वरदत्त– वही
२४. पादताडितक–श्यामिलक– वही
२५. रत्नावली–हर्ष–डा० शिवराज शास्त्री की टीका–साहित्य भण्डार मेरठ (१९६८ ई०)
२६. प्रियदर्शिका–हर्ष–पं० रामचन्द्र मिश्र की टीका–चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी (१९५५ ई०)
२७. नागानन्द–हर्ष–पं० बलदेव की टीका–चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी (१९६८ ई०)
२८. वेणीसंहार–भट्टनारायण–डा० शिवराज शास्त्री की टीका–साहित्य भण्डार मेरठ (१९७२ ई०)
२९. मत्तविलास–महेन्द्रविक्रमवर्मा–श्री कपिलदेव गिरि की टीका–चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी (१९६६ ई०)
३०. महावीरचरितम्–भवभूति–वीरराघव की टीका–निर्णयसागर प्रेस बम्बई (१९२६ ई०)

३१. मालतीमाधवम्—भवभूति—चन्द्रकला हिन्दी—संस्कृत टीका—चौखम्वा संस्कृत सीरीज वाराणसी (१६५४ ई०)

३२. उत्तररामचरितम्—भवभूति—ब्रह्मानन्द शुक्ल की टीका—साहित्य भण्डार मेरठ (१६७५ ई०)

३३. आश्चर्यचूडामणि—शक्तिभद्र—पं० रमाकान्त झा की टीका—चौखम्वा विद्याभवन वाराणसी (१६६६ ई०)

३४. वीणावासवदत्तम्—शक्तिभद्र—जर्नल आफ ओरियन्टल रिसर्च मद्रास (१६३१ ई०)

३५. रामाभ्युदय—यशोवर्मन्—वी राघवन् कृत 'सम ओल्ड लास्ट प्लेज' में उद्धृत अंश—अन्नामलाई विश्वविद्यालय प्रकाशन (१६६१ ई०)

३६. अनर्घराघव—मुरारि—काव्यमाला सीरीज सं० ५ (१६३७ ई०)

३७. तापसवत्सराज—अनंगहर्ष—देवीदत्त शर्मा की टीका—साहित्य भण्डार मेरठ (१६६८ ई०)

३८. सुभद्राधनञ्जय—कुलशेखरवर्मन्—गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित—त्रिवेन्द्रम (१६१२ ई०)

३९. तपतीसंवरण—कुलशेखर वर्मन्— वही (१६११ ई०)

४०. हनूमन्नाटक—दामोदर मिश्र—श्री मोहनदास की टीका—क्षेमराज श्री कृष्णदास वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई (१६६६ ई०)

४१. चण्डकौशिक—क्षेमीश्वर—श्री जगदीश मिश्र की टीका—चौखम्बा विद्या-भवन वाराणसी (१६६५ ई०)

४२. बालरामायण—राजशेखर—जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित (१६१० ई०)

४३. वालभारत (प्रचण्डपाण्डव)–राजशेखर–श्री हरिदत्त शर्मा की टीका–
चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी
(१९६९ ई०)

४४. कर्पूरमञ्जरी–राजशेखर–श्री चुन्नीलाल शुक्ल की टीका–साहित्य
भण्डार मेरठ (१९७२ ई०)

४५. विद्धसालभञ्जिका–राजशेखर–श्री रमाकान्त त्रिपाठी की टीका–
चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी
(१९६५ ई०)

४६. कुन्दमाला–दिङ्नाग–श्री चुन्नीलाल शुक्ल की टीका–साहित्य भण्डार
मेरठ (१९७२ ई०)

×××

*

परिशिष्ट–२

नाटककारों, नाटकों और सूक्तियों की अनुक्रमणिका



(२) शूद्रक–

१. **मृच्छकटिक**

(३) कालिदास–

१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्–

(८) ईश्वरदत्त–

१. धूर्तविटसंवाद–

(९) श्यामिलक–

१. पादताडितक–

(१०) हर्ष–

१. **प्रियदर्शिका–**

२. **रत्नावली–**

३. **नागानन्द–**

(११) भट्टनारायण–

१. **वेणीसंहार–**

(१४) शक्तिभद्र–

१. आश्चर्यचूडामणि–

२. **वीणावासवदत्तम्**–

(१५) यशोवर्मन–

१. रामाभ्युदय–

(१६) मुरारि–

१. अनर्घराघव–

(१७) अनङ्गहर्ष–

१. तापसवत्सराज–

(१८) कुलशेखरवर्मन्–

१. **सुभद्राधनञ्जय–**

२. **तपतीसंवरण–**

(१६) दामोदर मिश्र–

१. हनूमन्नाटक–

(२२) दिङ नाग—

१. कुन्दमाला

—समाप्तम्—